Chapter-2

पर्व द्वितीय

-: श्री आत्मानन्दजी महाराजजीका जीवन तथ्य :-

गुणागारका प्रास्ताविक परिचय

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

शिशु आतमका क्षत्रिय कुलमें अवतरण-माता पिताके लाड-प्यार और पारिवारिक सुखमे झुलता बचपन-

लघुवयमें पितृवियोग-जोधाशाहजी के घर परवरिश-

व्यक्तित्व लाखो में एक --- चित्र कलाकार किशोर देवीदास--

धार्मिक व्याप और जैन मुनिसे परिचय-संसार त्याग भावनाके बीजांकुर-ढूढक दीक्षा ग्रहण----

ज्ञान पिपासा तृप्ति एवं संयमाराधनार्थ सतत परिभ्रमण और अथक परिश्रम---

सत्यकी झाँकि और श्री रत्नचंद्रजीका विशिष्ट सहयोग---

अन्य साथियो से परामर्श-सद्धर्मकी प्ररूपणा-ढूंढक मतका त्याग।

गुजरातमें पदार्पण-पवित्र शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्रा---

संवेगी दीक्षा (श्री बुद्धिविजयजी म. सा. का शिष्यत्व) अंगीकार---

गुरुवर्य-श्री बुद्धिविजयजी म सा. (बूटेरायजी) का परिचय---

संयमचर्या, धर्मप्रचार,शास्त्रार्थ हेतु गुजरात-मारवाड-पंजाबादि स्थानोमे विचरण-

साहित्य सृजन-ज्ञानोद्धार---ज्ञानभक्ति-

सद्धर्म संरक्षणार्थ शास्त्रीय चर्चायें-जैन सिद्धांतोंकी सिद्धि एव पुष्टि-

जीवनका अनमोल उपहार (आचार्य पद) प्राप्ति---

पंजाब प्रति गमन-सम्यक् रत्नत्रयीके निर्मलतर सम्मार्जन और संवर्धनके प्रयास रूप अनेकविध कार्य-शासन सेवा-

बहुमुखी प्रतिभाके स्वामीका गुणावलोकन-समाज कल्याणके साक्षात् अवतार

सह्रदयी उदारता और विशालता-विश्वशान्तिदूत- नम्रता व निरभिमानता-साहसिकता-विनयशीलता-महातपस्वी-विशुद्ध नैष्ठिक ब्रह्मचारी-दूरदर्शी आचार्य-चिकागोगमनकी प्रेरणा व जैन धर्मका प्रचार-प्रसार ।

गुरुमाताके रुपमे-विशाल शिष्य-प्रशिष्य परिवार----

वाक्संयमी-अप्रमत्त-समयज्ञ सत-संस्कृतिरक्षक-मनीषी सर्जक-मंत्रवादी सूरिराज-अनूठी व्याख्यान कलाके स्वामी-प्रत्युत्पन्नमति उत्तरदाता-तार्किक शिरोमणी-

विशाल साहित्यिक अध्येता-विश्वविभूति

बुझते दीपककी प्रज्ज्वलित ज्योत-जीवनके अंतिम पल

वंदे श्री वीरमानन्दम्

पर्व द्वितीय

श्री आत्मानन्दजी महाराजजीका जीवन तथ्य

" सद्विद्योन्नमनं सुधारितजनं धर्मक्रियोदुद्योतनं,
क्लृप्तार्हदभवनं, सुयोजितधनं सद्ग्रन्थनिष्पादनम् ।
आत्मारामुनेरधर्मशमनं सद्देशनादेशनं,
लोकोद्धारघनं गुणोपनमनं, धन्यं परं जीवनम् ।। " [1]

शाश्वत धर्मकी परम्पराके वर्तमान अवसर्पिणीकालीन चौबीस तीर्थकरोंमें से अंतिम कर्णधार श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामीजीके अनुगामियोंकी परम्परामें तिहत्तरवे क्रम पर बिराज़ित चरित्रनायक युगप्रधानाचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. सा. के (सन १८३६ से १८९६ ई.) प्रभावशाली-प्रतिभा सम्पन्न-प्रतापवंत व्यक्तित्वका परिचय अत्र करवाया जा रहा है।

गुणागारका प्रास्ताविक परिचय--महापुरुषोंकी शक्ति अचिन्त्य होती है। अतीत के वे वारिसदार, वर्तमानको सुसंस्कृत करके-नये ही रूप रंगसे सजाकर, कल्याणमय-मंगलकारी-सुंदर भावि दर्शाते हैं। सार्वभौम सत्यके मूर्तिमंत स्वरूप, सत्यनिष्ठ, धीर-वीर श्री आत्मानंदजी महाराजजी के जीवनमें सत्यके प्रति पग-पग पर आकंठ श्रद्धा रस छलकता है। वे अपने गुरुजन पूज्य श्री अमरसिंहजी म. को, उनकी प्रशंसा पुष्पवृष्टि और स्नेह एवं वात्सल्यकी रेशम डोरके प्रत्युत्तरमें स्पष्ट वक्ता बनकर-नम्र तथापि दृढ भावसे-कहते हैं--- **"आप मेरे मन परमपूज्य और समादरणीय है, परन्तु क्या किया जाय ? आगमवेत्ता पूर्वाचार्योंके लेखोके विपरीत अब मुझसे प्ररुपणा होनी अशक्य है। मै तो वही कहूँगा जो शास्त्रविहित होगा शास्त्र विरुद्ध-मनःकल्पित आचार विचारोके लिए अब मेरे हृदयमे कोई स्थान नहीं रहा । और मेरी आपसे भी विनम्र प्रार्थना है कि आप झूठे आग्रह छोडकर तटस्थ मनोवृत्तिसे सत्यासत्यका निर्णय करनेका यत्न करे और शास्त्रीय दृष्टिसे प्रमाणित सत्यको बिना संकोच स्वीकार कर लीजिए ।"** [2]

सत्यके गवेषक-सत्यके प्ररूपक-सत्यके प्रचारक; सत्यके विचारी-आचारी-प्रचारी एवं सत्यके संगी व साथी *अमर 'आत्मा'* -जिनका अंतरंग सत्यसे लबालब भरा था, तो बहिरंग व्यक्तित्वके परिवेशमें सत्यके ही सूर प्रवाहित थे; सत्यकी सुरीली लय पर केवल सत्यका नर्तन था। ऐसे सत्यकी ज्वलंत ज्योतिर्मय विभूति-जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराजजी के विराट् प्रकाशपुंजके एक अणुरूप-किरण-मात्र प्रकाशित करनेका आयास, आस्थायुक्त भक्तिकी शक्ति स्वरूप अनायास ही आकार ले रहा है।

आपके समयकालीन परम भक्त श्री जसवंतराय जैनीने आपके जिस स्वरूपको प्रत्यक्ष रूपमें-स्वचक्षुसे निहारा है उसे वे यथास्वरूप आलेखित करते हैं----**"श्री आत्मारामजी महाराज जैन कुलोत्पन्न न थे। वह थे एक महान योद्धा क्षत्रियके पुत्र। क्षात्रत्व था उनकी नस-नसमे। उनकी साधुवृत्ति भी क्षत्रियत्वसे खाली न थी। वह थे सद्धर्म प्रचारक, जैन शासनके युगप्रधान, जैन धर्मके प्रभावक, जैन प्रजाके ज्योतिर्धर, वादिमुखभंजक; उनमे थी कला-**

निरुत्तर करनेकी, उनमें शक्तिथी-परास्त करनेकी: बरसता था नूर-उनके चेहरे पर; बरसतीथी पियूषधारा उनके मुखारविंदसे; लग जाती थी झडी अनेक युक्ति प्रमाणोकी- जब वे व्याख्यान देते थे; झुकते थे जाने-अनजाने, चरणोमें-जब दिखतीथी दिव्यमूर्ति चली जाती... ...जिस दीर्घ नयन, विशाल ललाट और देव स्वरूपकी यह मनोहर छबी है वह जरूर धर्ममूर्ति,सत्य वक्ता, परम साहसी, निर्भीक, विशेषज्ञ, विद्वान शिरोमणी, परम पुरुषार्थी, बाल ब्रह्मचारी, दूरदर्शी, विद्यावारिधि, अनेक गुण निधान, धीर, वीर, गंभीर और अवतारी पुरुष है । [7]

और अब उपलब्धि कराती हूँ श्रेष्ठ 'आत्मा' के विश्व स्तरीय श्रेष्ठतम सम्मानकी, जिससे उनके प्रति मस्तक श्रद्धासे अवनत और गौरवसे उन्नत हो जाता है---

"No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain community as Muni Atmaramji. He is one of the noble band sworn from the day of initiation of the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the higest priest of the Jain community and is recognised as the highest living authority on Jain religion and literature by Oriental Scholars-" [8]

आबाल्यकाल सत्तर सालके अध्ययन पश्चात् पांडित्य-कीर्तिलाभ द्वारा सभा-विजयी और राजा-महाराजाओंसे ख्याति-प्रतिपत्ति कमानेवाले दिग्गज विद्वान श्रीमान् परिव्राजक योगजीवानंद स्वामी परमहंसजी,- सत्यही आत्मा है जिसकी-ऐसे सर्वोत्कृष्ट जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीके प्रभावपूर्ण-सत्यसारभूत उत्तम ग्रन्थरत्न- 'जैन तत्त्वादर्श 'और' अज्ञान तिमिर भास्कर'के वाचन-चिंतन-मनन से अभिभूत होकर अत्यंत विनयपूर्वक प्रणिपात करते हुए, अपनी लेखिनी के उत्तम प्रशस्ति-पुष्पोंकी माला समर्पित करके निजात्माको कृतकृत्य मानते हैं-यथा-

"योगा भोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो,
दिग्जेताजेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितोजिष्णुजिह्वैः ।
जीयाद्दायादयात्री, खलबलदलनो, लोललीलस्वलज्जः,
कैदारौदास्यदारी, विमलमधुमदो, द्दामधामप्रमत्तः ।" [9]

कलकत्ताकी रोयल एशियाटिक सोसायटीके ओन. सेक्रेटरी और श्री 'उपासक दशा' आगम सूत्रके अनुवादक-सम्पादक एवं संस्कृत-प्राकृतके विद्वान---डॉ.ए.एफ.रुडोल्फ होर्नल-ने आपके प्रश्नोत्तर रूप मार्गदर्शनसे प्रभावित होकर अपने 'उपासक दशा' (आगम सूत्र)सम्पादित ग्रन्थको, आप के प्रति श्रद्धायुक्त समर्पित करते हुए उस समर्पण पत्रिकामें जो भावोद्‌गार भरते हैं-हृदयस्पर्शी हैं-

"दुराग्रह ध्वान्त विभेदमानो, हितोपदेशामृतसिन्धुचित्तः
संदेह संदोह निरासकारिन्, जिनोक्त धर्मस्य धुरंधरोऽसि (१)

"अज्ञान तिमिर भास्करमज्ञान, निवृत्तये सहृदयानाम्
आर्हत् तत्त्वादर्शग्रन्थमपरमपि भवानकृत् ।। (२)

"आनन्द विजय श्रीमन्नात्माराम महामुने

मदीय निखिल प्रश्न व्याख्यात· शास्त्रपारग ।। (३)

"कृतज्ञता चिह्नमिद ग्रन्थ संस्करण कृतिन्

यत्न मपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ।।" (४) [६]

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ--- ऐसे कई देश-विदेशके विद्वान-पंडित, राजा-महाराजा, महात्मा-साधु-संन्यासियोकी अनन्य प्रशस्तियाँ प्रापक **उत्तम आत्मा** का जिस समय इस धरती पर अवतरण और विचरण होनेवाला था, उस समय इतिहास शहादत-बलिदान-वीरता-पराक्रमकी ओर करवट बदल रहा था। बाह्यसे मनमोहक-मंद समीर, आभ्यन्तरसे सभ्यता और सस्कृतिके मूलभूत संस्कारों पर कुठाराघात करनेवाली विषाक्त हवाके झकोरोंकी तरह समाजको दिशाभ्रान्त करता जा रहा था। माँ भारतीके बाल नैतिक एव आर्थिक रूपसे बिछे हुए षड्यत्रोकी जालमें फँसकर, क्रूरता से बेहाल होते जा रहे थे। 'सोनेकी चिडिया' के अंग-प्रत्यंग विक्षिप्त होते जा रहेथे। अंग्रेजी साम्राज्यकी नागचूड़, प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। नैराश्य और जडतापूर्ण प्राचीन धर्म और सुधारवादी नए पंथ एवं धर्मोंके बीच संघर्ष प्रारंभ हो गया था। अज्ञानसे घिरे लोग अपने गौरवपूर्ण इतिहासको भूल चूके थे। समाज तन-मन-धनसे शक्तिहीन-दुर्बल, विवेकहीन-अंधविश्वास और रूढ़ि परपरासे जड होता जा रहा था। इस तरह एक और अनेकविध मत-मतांतर आधारित धर्म और दूसरी ओर भौतिक वृत्तियोको चौंधियानेवाले पाश्चात्य शिक्षणके प्रभावने भौतिकवादी तरंगोमें बहकर लोगोंको सत्य धर्मकी सुधसे विमुख कर दिया था।

जैन समाज भी इससे अछूता कैसे रह सकता है ? ज्ञानवान् एव प्राणवान् जैनी अज्ञान और मूढ़ताकी आंधीके थपेडोको झेलता हुआ, शिथिलाचारी-संयम और तप त्यागके त्यागी-केवल भेखधारी साधुसंस्थाके नेतृत्वमे स्वार्थ और लोलूपताके प्रहारोसे खंड-खड हो रहा था। धर्म नेताओकी धार्मिक नैतिकताके अस्त होते सूर्यके कारण भ्रान्त एवं क्लान्त श्रावक वर्गमे अनेक भ्रान्तियाँ फैल रहीथी।

"कई जैन शिख पंथमे शामिल हो गए थे। बहुतसे अपने आपको सनातनधर्मी कहने लगे। जो व्यक्ति जैन धर्मके नियमो पर स्थिर न रह सके वे आर्य समाजकी ओर झुक पड़े। साराश यहि कि जैनो पर चारो ओर से छापा मारा जाता था और रक्षाके कोई उपाय दृष्टि गोचर न होता था। ऐसे समयमे जबकि . जैन समाजमे ज्ञानका सूर्य अस्त हो चूका था और अज्ञानने डेरा जमाया हो-समाजकी रक्षाके लिए एक महान और उत्साही व्यक्तित्वका प्रकट होना अनिवार्य था, जो अपनी विद्वत्तासे सुप्त जैन समाजको जागृत कर उसे अपने कर्तव्योसे परिचित करवाता और विरोधियोके निराधार आक्षेपोका खंडन करके समयकी आवश्यकतानुसार जैन समाजको जगाकर जैन धर्मका डंका देश-विदेशमे बजाता। मूर्तिपूजाकी विरोधी तरगोंका मुकाबला कर उन्हे पीछे धकेल देता।" [७]

शिशु आतमका क्षत्रिय कुलमे अवतरण---ऐसे कस्मकसके नाजूक समयमे-एक सत्ता के अस्त और दूसरीके उदयकाल या क्रान्तिकालमे पजाबके पराक्रमशाली, रण कौशल्य के कीर्तिकलश सदृश कलश जातिके, चौदहरा कर्पूर ब्रह्मक्षत्रिय कुलके, साहसिक-स्वाश्रयी-शूरवीर एव युद्धप्रिय '*गणेशचंद्र*' और स्नेह एवं मधुरताकी मूर्ति '*रूपादेवी*' के संसारमे-जैनशासनके समर्थ ज्योतिर्धर, शास्त्र और

संयमकी शेर-गर्जना से शिथिलता, जडता, पाखंड़के युगव्यापी अधकारके एक मात्र विदारके, नवयुग निर्माता, यथानाम तथा गुणोपेत, चूबकीय आध्यात्म शक्तिके स्वामीका-उदीयमान दिनकर जैसे पृथ्वीके श्री और सौंदर्यको वर्धमान करनेवाले देवरूपधारी बालक '*आत्मा*' का परमोत्तम और महामगलमय चैत्र मासकी शुक्ल प्रतिपदा-वि.सं.१८९४ (गुजराती-वि.स.१८९३)-तदनुसार ई.स.१८३६ गुरुवार-पंजाब स्थित जीरा तहसिलके लहरा गाँवकी पावन धरा पर अवतरण हुआ।

माता-पिता और स्नेहीजनोके लाडप्यार और पारिवारिक सुखमें झुलता बचपन ---

"होनहार बिरवानके होत चिकने पात"-लोकोक्ति अनुरूप आपका वदनकमल विशिष्ट तेज, अद्‌भूत कान्ति और स्वभावसिद्ध प्रभाविकताके कारण मूल्यवान हीरेकी तरह चमकता था; तो प्रकृतिकी, गोदमे पलनेवाले नैसर्गिक शारीरिक सौष्ठव प्राप्त उनका अनुपम लालित्य भी जन-मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला था। उनके अवतारी जीवने उस समय मानवाकार धारण किया, जब धार्मिक तत्त्वोका संहार हो रहा था, लोग धर्मसे विमुख होते जा रहेथे। सद्धर्म प्रकाशक और प्रचारक विरले ही थे। पाखंड-शिथिलता और अविद्याका अंधकार विस्तृत होता जा रहा था। तत्कालीन ग्राम्यजीवनकी छबि अंकित करता हुआ रेखाचित्र दृष्टव्य है-यथा- "उस समयके तरुण दिनभर खेला करते थे। प्रकृतिका अनाच्छादित विस्तीर्ण प्रांगण ही उनका क्रीडास्थल होता, सूर्यकी जीवनदायिनी किरणे ही उनकी त्वचाके लिए पौष्टिक विटामीनका काम देतीं, नदीमे सतत बहनेवाला शीतल-स्वच्छ जल उनका स्फूर्तिवर्धक पेय होता, गाँवके खेतोमे उत्पन्न होनेवाली हरी-हरी ताजा सब्जियाँ व ऋत्वानुसार पकनेवाले फल उनके आहारका काम देते तथा धारोष्ण दूध और सदा शीतल लस्सी उन्हे उसी प्रकार स्वादिष्ट लगती जैसे देवताओको अमृत ! किसी साधु-सतके मुख-कमलसे सुना गया एकाध उपदेशात्मक दोहा अथवा नैतिक आख्यान उनके ज्ञानभडार भरनेके लिए पर्याप्त था।"

ऐसे परिवेशमें अक्षरज्ञानसे वचित रहनेवाले दित्ताने अपनी विशिष्ट प्रतिभासे ताश या शतरंजका खेल हों या कबड्डी आदिकी स्पर्धा; साहसिकता स्वरूप निशानबाजी-मल्लयुद्ध-गदायुद्ध हो या चित्रकारितादि अनेकविध कलाक्षेत्रोमे सदा-सर्वदा विजय ध्वज ही फहराया था। अपने मित्रोको सैनिक शिक्षा देनेवाले इस बाल योद्धाके लिए सेनानियोकी हूबहू नकल करना-मनोविनोदके साधन जैसा था। वे अपने साथियोके बेताज बादशाह थे, तो नैतिकता-प्रमाणिकता मे भी अपना सानी नही रखते थे। सच्चाईमें उनके वचनोको ही प्रमाणरूप माना जाता था।

माँ भारती जिस समय स्वतंत्रताकी प्रसुति पीडासे कराह रही थी, हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें जब शौर्य-साहसके बिगुल बज रहे थे, ऐसे नाज़ूक कालमे-गणेशचंद्रजीका आत्मज़-पिताके अनुकरण स्वरूप हाथमें नंगी तलवार लेकर डाकूओंसे अपने घरकी सुरक्षाके लिए खडा रहनेवाला दित्ता-सत् और सत्यशास्त्र रूप शस्त्रोंके बलपर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वर बनकर सारे समाज़की अंतरंग शत्रुओंसे रक्षा करनेको कटिबद्ध हो इसमे क्या आश्चर्य?। आपकी नाड़ियोंमें बहनेवाले पराक्रमी पिताकी शूरवीरताके संस्कारयुक्त खूनके कारण कूट-कूट कर भरी पडी साहसिकता और निर्भीकताके बल पर ही जीवनके हर मोड़ पर डटकर मुकाबला करके आप सदा विजयी बनकर गुज़रे हैं-चाहे बचपनमें नदीमें से डूबती मुस्लिम अबलाको उसके अंगज़ समेत बाहर निकाल कर बचानेका प्रसंग

HANSA MEHTA LIBRARY Univers...

हों या युवानीमे पूज्य गुरुदेव एवं साथियोंकी रक्षा हेतु भिल्ल से भीड कर उसे सबक सिखानेका अवसर हों; चाहे किशोरावस्थामे पालक पिताश्री जोधाशाहकी लखलूट सम्पत्तिका लुभावना आकर्षण छोडनेका पल हो या स्थानकवासी संप्रदाय के अत्यंत सम्माननीय और प्रतिष्ठित जीवन त्यागनेका समय आयें-हर वक्त दृढ निर्धारसे सत्यपंथके प्रवासी बनकर विजयकूच ही की हैं। साथसाथमे आत्मिक-अहिंसक युद्धमे भी वीरता-धीरताके बल पर आतररिपुओंको परास्त करनेमें सदाबहार बसंतकी भाँति खिल उठे हैं।

लघुवयमे पितृवियोग---लेकिन, गणेशचंद्रजी अपने प्रिय पुत्रकी साहसपूर्ण बालचर्यामें बीजरूपसे रही हुई गुणसंततिके भाव विकासको देखनेके लिए सौभाग्यशाली न बन सके, न वीर पुत्र आत्माराम, वीरपिताकी पुनित छत्रछायामे अपने चमत्कारपूर्ण भावि जीवनको विकासमें लानेकी उपयुक्त सामग्रीसे लाभान्वित हो सके। भाग्य विधाताकी भव्य बुलंदीने हिंसात्मक वीरताकी परिणति प्रगट होने पूर्व ही उसे अहिंसात्मक परिवेशका पुट देकर प्रमार्जित करनेकी चेष्टा की। तात्त्विक दृष्टिसे कर्मोदयसे प्राप्त इस परिस्थितिके निर्माणमे निःसंतान जागीरदार सोढ़ी अत्तरसिंहजीकी, आत्मारामजीको अपने वंशतंतु कायम करनेवाले पुत्र रूपमें प्राप्त करनेकी प्रबल जिगिषा रूप दृष्टि निमित्त बन गई। क्योंकि महन्त श्री सोढ़ीजीकी पैनी दृष्टिसे, दित्ता-किसी वनराज शेरकी संतान भेड़-बकरोंके समूहमे गलतीसे रास्ता भूलकर आ पहुँची हैं[10], अथवा कोई तेजस्वी नक्षत्र टूटकर पृथ्वीपर आ गिरा है, जो भविष्यमे या तो राजा होगा या राजमान्य गुरु।[11]

अत्तरसिंहजीकी 'पुत्रदान' याचनाको ठुकरानेके परिणाम स्वरूप गणेशचंद्रजीको जीवनसे हाथ धोना पड़ा और नव पल्लवित पौधे स्वरूप अबोध बालक दित्ताको, उसकी भाग्यदोरने जीराके लाला जोधेशाहजीके घर पहुँचाकर धर्मामृतसे अभिसिंचित जीवनोद्यानमे विकस्वर होकर अहिंसा धर्मके वट-वृक्ष स्वरूप पानेका सौभाग्य बक्ष दिया वि.सं.१९०६। [12]

जोधाशाहजीके घर परवरिश---बाल दित्ताका दिल इस समस्यामे उलझा था कि आखिर इस प्रकार प्राणप्यारे 'माँ-बाप' अपने कलेजेके टूकड़ेको क्यों त्याग रहें हैं? अफसोस, इस उलझनको सुलझानेवाला इस नये घर-परिवार-परिवेशमें, समयके प्रवाहके अतिरिक्त कोई न था। शनैः शनैः देवीदास नामाभिधान दित्ता इस नये वातावरण-परिवार-मित्रमंडलादिके साथ हिल मिल गया। पारिवारिक जनोंके निःसीम वात्सल्य-प्यार दुलारने मनके घावको रुझानेमें अक्सीर मल्हमका कार्य किया-और अब उसका मन लगने लगा।[13]

उस परिवारके धार्मिक संस्कार रूप 'अहिंसा परमो धर्म'की प्रकाशमान तेज़रेखाने उसे पतंगेकी भाँति अपनी ओर आकर्षित किया, जिसने अपनी अंतिम सांस तक उस तेजरेखा को विशेष प्रज्ज्वलित और प्रकाशित रखनेके लिए सर्वस्व समर्पित किया।

प्रत्येक प्रभाविक व्यक्तित्वधारी अपनी प्रारंभिक अवस्था-किशोरावस्थामें जिस मानसिक कसमकसका सामना करता है, वही अनुभव वे भी करने लगे। आत्मा की अगोचर-अदम्य शक्ति का स्रोत फूट पडनेके लिए विवश बनता जाता था। मनोमंथन मानसिक बिलोडन कुछ करनेके लिए

मचल रहा था। कभी गंभीर तो कभी चंचल तन-मनका प्रवाह दिशा ढूंढ रहा था। वे अगम्य गूढ शक्तियोंकी करामते देवीदासकी ऊंगलियोंसे बरबस बहने लगीं। किसीसे भी मार्गदर्शन या शिक्षा पाये बिना ही उन ऊंगलियोसे खिंची गई रेखायें अपने आपमे अनूठे चित्र स्वरूपको ग्रहण कर लेने लगीं। कैसा भी दृश्य एक बार देख लेने पर उसका तादृश चित्र बनाना, मानो उनके बायें हाथंका खेल था। पशु-पक्षी हों या नर-नारीका; नैसर्गिक सौंदर्य हों या कल्पना पंखेरुकी उड़ानका चित्र हो- चित्रित करनेमे वे बडे ही निपुण थे। अंग्रेजों और सिक्खोंकी लड़ाई, दोनों सेनाओका परस्पर युद्ध, दौड़ते घुड़स्वार, इधर-उधर भागते हुए सशस्त्र सैनिक, सैन्यकी चलती हुई पल्टनको चित्रित करना हों या जोधाशाहजी के मकानको चित्रितकर उसमें स्वयं लालाजी और पारिवारिक जनोका रेखाचित्र अंकित करना हों वा ताशके पत्ते चित्रित करने हों-ये और उनके सदृश कई चित्रोको चित्रित करना इनके मनोरंजनका साधन था।[१४]

एकबार एक अफसरके 'ताश' मंगवाने पर, उदार-जिंदादिल, मित्रमंडलीके इस अफसेर 'आत्मारामजी'ने जब हस्तचित्रित ताश भेट कर दिया, उस वक्त प्रसन्नतासे उस परदेशी अफसरने इस बाल-कलाकारकी अद्‌भूत कलाकी हार्दिक प्रशसा करते हुए, बडे भारी सम्मानसे पुरस्कृत कियां। लेकिन, अफसोस, एक गैरसे तारिफ़ पानेवाले इस महान कलाकारकी स्वजन-स्नेहीजनोंने-'घर की मूर्गीदाल बराबर'-न उसकी कद्र समझी, ना उन उत्तम कृतियोंका कोई संकलन ही किया -नाहि कही नामोनिशान तक रहा,जो प्रायः किसी भव्य संग्रहालय या कला प्रदर्शनीको शोभायमान करनेका सम्पूर्ण सामर्थ्य रखती थी। ऐसा क्यो हुआ ? शायद, तत्कालीन जनसमाजकी घोर अज्ञानता, कला-परख का अभाव, सग्राहक रसिक-परीक्षक कला दृष्टि शून्यता-या ग्रामीण जड़-मूर्खता ही मानो।

ऐसे अनेक चित्रोंके अंकनकर्ता-इस बाल चित्रकारने क्रमशः पुख्तता प्राप्त कर जैन समाजके मानचित्रको भी समूचे-सुंदर ढंगसे यथासमय-यथायोग्य इस कदरसे चित्रित किया, अपनी दूरंदेशीय कल्पनाके ऐसे स्वर्णिम-सुरम्य रंग भरे जो आज भी जैन संघके समस्त साधु और श्रावक समाज़ रूप दोनों नेत्रोको प्रमोदित कर रहे हैं। उसी रंगमे रंगा जैन धर्म, आपके ही अथक-अविश्रान्त-अतुल परिश्रमके परिणाम स्वरूप सारे विश्वमे श्रीयुत् वीरचंदजी गांधीके सहयोगसे प्रचलित-प्रकाशित एवं प्रसारित हो पाया। आपकी उन गूढ शक्तियोंकी ही देन है कि अद्यापि अन्य धर्मावलम्बी-आस्थावान् भक्तगण उन्हे अंतरकी गहराईसे चाहते हैं।

यही चित्रांकन आपके विविध ग्रन्थालेखनमे भी कदम-कदम पर बिखरे पुष्पकी सजावट देते हैं यथा - (१) अशरणके शरण श्री अजितनाथ भगवंतकी स्तवना करते हुए शरण्य-भावांकन---

"जन्म मरण जल फिरन अपारा. ... हुं अनाथ उरझ्यो मझधारा..... ...
कर्म पहार कठन दुःखदायी . नाव फसी अब कोन सहायी ।
पूर्ण दया सिन्धु जगस्वामी, अर्टीत उधार कीजोजी.. ......तुम सुणीयोजी ।[१५]

(२) पैनी दृष्टिसे किया गया संसारकी क्षण भंगुरताका चित्रण -

"आलम अजान मान, जान सुखदुःख खान, खान सुलतान रान, अंतकाल गये है ।

रतन जरत ठान, राजत दमक भान, करत अधिक मान, अंत खाख होये है ।।
केसुकी कली-सी देह, छीनक भंगुर जेह, तीनही को नेह गृह, दुःख बीज बोये है ।
रभा धन धान जोर, आतम अहित भोर, करम कठन जोर, छारनमें सोये है ।"[15]

(३) ज्ञान प्राप्तिके प्रति समाजकी उदासीनता देखकर दुःख व्यक्त करते हुए उद्गार तत्कालीन समाज स्वरूपको मूर्तिमंत करते हैं-मुसलमानोंके राजमें जेनोके लाखो पुस्तक जला दिए गए और जो कुछ शास्त्र बच रहे हे, वे भडारोमें वद कर छोडे हे। वे पडे पड़े गल गये हे, वाकी दो-तीन सो वर्षमें गल जायेगे। जैसे जेन लोग अन्य कामोमें लाखो रूपये खरचते हे, तेसे जीर्ण पुस्तकोके उद्धार करानेमें किंचित् नही खरचते हे। और न कोई जैनशाला बनाकर अपने लड़कोको संस्कृत धर्मशास्त्र पढाता हे। जेनी साधुभी प्रायः विद्या नहीं पढते हे, क्योकि उनको खानेका तो ताज़ा माल मिलता हे, वे पढके क्या करेगे ? और यति लोग इन्द्रियोके भोगमे पडे रहे हें, सो विद्या क्यो कर पढे ? विद्या के न पढने से तो लोग इनको नास्तिक कहने लग गए है, फिर भी जैन लोगोको लज्जा नही आती हे ।"[17]

ऐसे अनेक सजे हुए हीरे-रत्नोमें कोहीनूर की तरह शान-शौकत चमकानेवाली और दर्शक-पाठक वृंदको आश्चर्यके उदधिमें डूबोनेवाली कलाकृति है-'जेन मत व्रक्ष'। राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और कलाके परिवेशमें जिस कृतिकी कोई कल्पना भी न कर सकता था; उस अंधाधूंध अंधकार युगमे आपने अवसर्पिणीकालकी वर्तमान चौबीसीके आद्यंत तीर्थकरोंका और चरम तीर्थपतिकी पट्ट परंपराका इतिहास शाखा-प्रशाखा-फूलपत्तियोंके नयनरम्य सुहावने समूहसे सुशोभित वृक्ष-रूपमें चित्रित करके अनूठे कल्पना चित्रण का पुट पेश किया है।

बाल सुलभ चेष्टारूप इन्ही चित्रोके रेखाकनने विकासपथके चरणचिह्नो पर स्वयंकी अदम्य-अगम्य-अदृश्य शक्तिको सचरित, करनेका जब प्रयत्न किया गया, तब चिरपरिचित फिरभी प्रच्छन्न सत्य और अहिंसाके मार्गकी प्राप्ति जीवनसूत्रके रूपमे हुई। रोम-रोमसे मुखरित सत्यनिष्ठाके प्रभावसे ही आप अपने समय के महान और सामर्थ्यवान युगपथदर्शक-युग प्रवर्तक-युग निर्माता बन सके। बाल वयमे-समवयस्क साथियोंमे जिस परम सत्यवादी दित्ताकी साक्षीको वृद्धभी मान्य करते थे; वही युवक आत्मारामकी युवानीमे सत्य ही सॉंसथी-सत्य पर ही आश थी; सत्यही आपके प्राण थे और सत्य ही आपका प्रण भी।

लाखोंमें एक---यह वह समय था जब देवीदास कभी तो भावि महान चित्रकारके रूपमे नयनपथमे झलकता था तो कभी परमोकारी-जीवदया प्रतिपालकके रूपमे स्वयंके जी-जानकी परवाह न करके अन्यके जीवनको बचाता हुआ-मौत के मुँहमेसे वापस खिंचनेवाला स्वरूप दृष्टिगोचर होताथा;[18] कभी प्रकृतिकी गोदमें घूमते नज़र आते या कभी नदीमें तैरते हुए। यही कारण है कि आपने सौष्ठवयुक्त, तेजस्वी, प्रतिभावंत, मांसल गात्रोमें छिपी पंजाबी व्यक्तित्वयुक्त आकर्षक देह विभूतिकी अपूर्व दैवी शोभा नैसर्गिक रूपसे ही प्राप्त की थी। 'लाखों में एक'-ऐसी तासीरवाला व्यक्तित्व वह होता है जिसका बाह्याभ्यन्तर स्वरूप समान रूपसे चमकता हो। देवीदासकी देवतुल्य अद्भूत कांतिसे युक्त सुगठित-सुडोल-लम्बीकाया, विशाल ललाट, उज्ज्वल-तेजस्वी-सुदीर्घ नेत्रयुगल, सागर सी गंभीर मुखमुद्रा और मेरुसदृश उन्नत एवं निश्चल वक्षःस्थल, असीम वात्सल्य पूर्ण-विश्व प्रेमसे

छलछलाता हृदयकमल सुदृढ एव मजबूत भुजाये, प्रबल पुण्य प्रभावसे शोभायमान चूम्बकीय-चमत्कारिक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व बाह्य रूपरंगकी आभा बिखेर रहा था, तो आजीवन सत्य भेखधारीकी सत्यके ही मूर्तिमंत स्वरूपमें, जन्मजात नेतृत्वकी झलकती और छलकती दिलेरी एवं मर्दानगी युक्त रोम-रोममे निवसित क्षात्रवट, साहसिकता, निर्भीकता, सहनशीलता, गंभीरता, धीरता एवं वीरताके साथ वाक्‌सयमितता, दृढता, उदारता, दया-करुणा और परोपकार परायणतादि अंतरंग गुणयुक्त आध्यात्मिक सुमन समूहोकी सुवास सर्व जन-मनको आह्‌लादित कर रही थीं।

धार्मिक व्याप और जैन मुनिसे परिचय---ऐसे होनहार वीर बालक देवीदासने जैनधर्म संस्कार युक्त धर्मप्रेमी जोधाशाहजीके परिवारके अहिंसक संस्कार रश्मियोंको झेलना-सिखना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः देवीदासके कोरे कागज जैसे निर्मल-स्वच्छ मानस पट पर सामायिक-प्रतिक्रमणादि धार्मिक अनुष्ठानोंका सुरुचिपूर्ण अंकन होने लगा। लहराके ग्रामीण वातावरणमें से बाहर आकर जीरामें लालाजीके घर सुंस्कारोकी सुवास पाकर देवीदासका अंतरपट बाग-बाग हो गया। घरके वातावरणके स्वाभाविक प्रभावसे वे कैसे वंचित रह सकते थे? यही पर ही उनके हृदयकी हलचलसे तरंगित मनोवृत्तियोको उचित मार्गदर्शन मिला। लालाजी से कुछ व्यावहारिक एवं व्यापारिक शिक्षा प्राप्त होने लगी और उधर आवागमन करनेवाले व चातुर्मास बिराजित जैन मुनियों से धार्मिक अभ्यासमें प्रगति होने लगी। देवीदासने नवतत्त्वादिके ज्ञानार्जनके साथसाथ उन मुनिराजोंके सहवासमें आत्मिक जागृतिका अनुभव किया। वैराग्य गर्भित देशना प्रवाहोके शीतल पानसे अद्यावधि किया हुआ ज्ञानाभ्यास आत्म चिंतनकी धाराको सबल करने लगा।[१९] फल स्वरूप विषैले, अस्थिर, असार संसारके प्रति इस नवयुवकके मनमे निर्वेद पनपने लगा संसार के प्रति निर्लेपता, उदासीनता, और सयम प्रति झुकाव बढ़ने लगा।[२०]

संसार त्याग भावना---चिन्तनके इस आलोडनमें उन्होने आलोकित किया-क्या ?-संसारका मार्ग सरल है-जीवन यापनके लिए ठीक है, लेकिन लक्ष्य बिन्दुकी प्राप्ति करानेवाला तो त्यागका कठिन मार्ग ही है। जीवन युद्धमे बल और साहस आवश्यक है, लेकिन, युद्धमे क्रूर-हिंसक-अनेकोके प्राणनाशक विजय सच्ची है अथवा अंतरमनकी बुराइयों पर विजयी बनना-सच्ची वीरता है ? शाश्वत सुख किससे?-हिंसक युद्ध विजयसे या इन्द्रिय दमनसे विषय-वासना पर विजय प्राप्त करवानेवाले अहिंसक युद्धसे? अंततः आपने पाया शांतिप्रद-आध्यात्मिक आनंद क्या है-कहाँ है-कैसे प्राप्त किया जाय ?

उनके चित्तप्रदेशके चितन कुसुमोने त्याग मार्गकी सुवाससे अपने दिल-दमागको पूरित कर दिया-सारे जीवनको सुवासित कर दिया। फलस्वरूप त्यागमार्ग अंगीकार करके साधुजीवन स्वीकृत करनेका दृढ़-अटल-अविचल निश्चय कर बैठे। न चलित कर सके उसे स्नेह और वात्सल्यभरे जोधाशाहजीकी लखलूट संपत्ति या सासारिक, वैवाहिक, वैभविक लालचके बंधन[२१] एवं न रोक सकी ममतामयी माताकी दिलकी, मातृऋणका बदला चूकानेके कर्तव्यकी पुकार अथवा अविरत बहनेवाली अश्रुधाराकी फिसलानेवाली जजीर।[२२] आपको तो श्रेयस्कर था केवल, स्व-पर आत्म

कल्याणकारी, जीवनोन्नतिमुख उत्तम-आध्यात्मकी पुनित प्राप्ति; सच्ची सुख प्राप्तिका सच्चामार्ग-त्यागमार्ग; जिस फकीरीके घुमक्कड, कठोर तप और त्यागमय, कठिनतम जीवनको अपना कर रंक से राय, जीव से शीव, छोटे से बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति अनंत-अव्याबाध-अक्षय सुखमय परमपद प्राप्त करते है वह साधु जीवन।

दीक्षाग्रहण---आपके दृढ़ निश्चयको जानकर एवं अनुभव करके ममतामयी माता और वात्सल्य मूर्ति धर्म पिता-परिवार-मित्र-स्नेहीजन-सभी हार मान गये। सभीने अंतरके हार्दिक आशीर्वाद-शुभ कामनाओंके साथ संन्यस्त जीवनके लिए संमति देकर अपने लाड़लेको विदा किया। माता-पिता-परिवारकी संकीर्ण परिधिमें से मुक्त विश्व संकुलके लाडले आत्मारामने अहिंसा-सत्यादिकी ज्वलंत ज्योतरूप पंच महाव्रत धारणकर स्वनाम सार्थक-उज्ज्वल, धन्य व महान बनानेके लिए साधु जीवनको अंगीकृत किया-वि.सं. १९१०। मृगशिर शुक्ल पंचमी तदनुसार ई.स. १८५३।[२३]

ममतामयी माता के संतोषपूर्ण अनराधार बरसते आशिषके बल पर, ढूंढक गुरु श्री जीवनरामजीका शिष्यत्व स्वीकार कर आत्मारामजीने अहिंसा-सत्यादिकी बुलंदीवाले उत्तम जीवन राह पर त्रिविध त्रिविध आत्म समर्पण कर दिया और बन गये मुनि श्री आत्मारामजी महाराज। ज्ञानार्जनकी अभिरुचिके जो बीज बचपनमें बोये गये थे, अब मस्तिष्क धराको फोड़कर अंकुरित हो रहे थे। शनैः शनैः छोटेसे गमलेमे से एक विशाल वटवृक्ष बननेको लालायित हो रहे थे। दीक्षोपरान्त तुरंतही विद्या व्यसनी इस नवयुवकने अपनी सारी शक्ति ज्ञानार्जनमें ही लगानी प्रारंभ की।

ज्ञान पिपासा तृप्ति एवं संयमाराधनार्थ सतत परिभ्रमण---ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा, तेज़ याददास्त और स्वच्छ-निर्मल बुद्धिसे-अभ्यास नैया अनेक विद्वान साधु एवं गृहस्थ रूपी पतवार के सहारे ज्ञान महार्णवकी तरंगो पर शीघ्रगतिगामी लक्ष्यबिन्दु तक पहुँचनेके लिए बावली बन रही थी। पल मात्र भी प्रमादका सेवन अध्ययन-रत आत्माको कैसे सुहाता ? अग्निमें ईंधनकी भाँति ज्ञान क्षुधासे पीड़ित आत्माको कितना भी पढे संतुष्टि कहाँ ? प्रत्युत, जितना पढ़े उतनी लगन बढ़ती जाती थी।

आपके गुरुश्री जीवनरामजी म. इतने अधिक ज्ञान सम्पन्न तो थे नहीं कि इस ज्ञान क्षुधाग्निको संतुष्ट कर सकें।[२४] इसी कारणवश आपको ज्ञान प्राप्तिके लिए तनतोड़-अविरत-अद्वितीय, प्रयत्न-परिश्रम और प्रवास करने पड़े। जहाँ कहीं, किसी भी ज्ञानीका जिक्र हुआ, किसी कोनेमें भी ज्ञान-प्राप्तिके आसार मिले, आप तुरंत वहाँ पहुँच जाते और उस अमूल्य ज्ञान-वारिका पान करते नही अघाते। ज्ञानामृत पानके लिए तो वे विश्वके कोने कोनेमें जानेको तत्पर थे। पाँच वर्षमें ही साधिक दस हज़ार श्लोक कंठस्थ करके, ३२ आगम शास्त्रोकी थाह पाकर-सकलागम पारगामी बनकर तत्कालीन समाजके अनेक प्रतिष्ठित विद्वान ढूंढ़क साधुओंकी पंक्तिमे स्थान पाना-उनकी बुनियादी, ठोस विद्वता का कीर्ति कलश था।

स्थान-स्थान पर गंभीर ज्ञान-गरिमाके स्वामीके चर्चे होने लगे थे, लेकिन इस सम्मान युक्त कीर्ति पताकाने उन्हे प्रसन्न करनेके प्रत्युत अधिक असमंजस भरी उदासीनता और उलझनमें उलझा दिया। मनघडंत पंचायती अर्थोंके आलाप और 'टब्बा'के अस्पष्ट अर्थोंके कारण मनमे उभर रही

शंकाओंसे व्युत्पन्न संघर्षने उन्हें बेचैन बना दिया। मनोसाम्राज्यकी विचार संततिने, पटवा वैद्यनाथ एवं मुनि फकीरचंदजीकी अमृत तुल्य-संस्कृत, प्राकृतके व्याकरणाभ्यास करनेकी-हितशिक्षा और काव्य, कोष, छंदालंकार, व्याकरणादिको व्याधिकरण माननेकी बेइलमीके मध्य तुलना करते करते सत्य गवेषक आत्मा के विवेक-चक्षु उद्घाटित हुए.[२५] तब उन्होंने अनुभव किया कि इस मूर्तिपूजा विरोधी समाजसे अधिक प्राचीन, अन्य मूर्तिपूजा समर्थक औरं पंचांगी स्वरूप पैंतालीस आगमोकी रचना एवं अनेको गच्छ-सम्प्रदायोके पूर्वाचार्यो रचित अनेक संस्कृत-प्राकृत साहित्यसे अत्यधिक समर्थ व समृद्ध समाज है। इनमेसे जैनत्वका सच्चा प्रतिनिधित्व कर्ता किसे माना जाय ? और किसे अपनाया जाय?

सत्यकी झाँकी और श्री रत्नचंद्रजीका विशिष्ट सहयोग---ज्ञान प्राप्तिमे बाधक साम्प्रदायिक रूढियोकी दिवारें और अपने पूज्य गुरुजीके निषेधोकी परवाह किये बिना सच्चे पथिकका अन्वेषण, त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ प्ररूपित अनतज्ञान राशिकी ओर प्रवृत्त हुआ।[२६] फलतः व्याकरण-न्यायादिका अभ्यास; विहारमें आनेवाले विभिन्न स्थानोंके ज्ञानभंडार स्थित अनुपम श्रुतवारिधिका पान; जैन संस्कृतिको गौरवान्वित बनानेवाली हजारो भव्य प्रतिमाये और अनेक प्राचीन विशाल जिनमंदिरादिके निदर्शन;[२७] देशुग्रामसे प्राप्त श्री शीलांकाचार्य कृत 'श्री आचारांग सूत्रकी टीका'का अध्ययन,[२८] उन सबके शिरमौर रूप, श्री रत्नचंद्रजी म.से आग्राके चातुर्मासमे प्राप्त अनेक शंकाओके समाधानकारक एवं आत्मोल्लासको वृद्धिगत करनेवाला सत्य-शुद्ध-असंदिग्ध आगमज्ञान व मनमें उठनेवाली प्रत्येक उलझन एवं चर्चास्पद विषयोका युक्तियुक्त सुलझाव[२९]-इन सबने श्री आत्मारामजीके अंतरात्माकी निश्चल आस्था प्राचीन आदर्श और निर्मल शास्त्र सिद्धान्तोकी ओर दृढ कर दी।

साथियोंसे परामर्श---मुनिश्री रत्नचद्रजीके संपर्क पश्चात् उनकी ही हितशिक्षा के प्रभावसे सत्यनिष्ठ श्री आत्मारामजीने प्रभु-प्रतिमाकी निंदा अपवित्र हाथोंसे शास्त्रोके स्पर्शका त्याग किया और ढूंढ़क वेशमे ही गुप्त रूपसे मंद फिर भी निश्चल गतिसे प्रचार-प्रसारके लिए अपने सहयोगी-साथी श्री विश्नचंदजी आदि साधुओंको भगवान श्री महावीर द्वारा प्ररूपित आदर्श जैन धर्मकी प्राचीनताकी, द्रव्य और भावसे आदर्श मूर्तिपूजा की, जिन प्रतिमा एवं जिनमंदिरोंकी विधेयात्मकताकी प्रतीति; स्थानकवासी साधुवेश एवं मुहपत्ति विषयक निरूपण तथा भ. महावीर स्वामीकी गच्छ परंपरामे ढूंढ़क संप्रदाय का स्थान ("है ही नही"-यह बात)-इन सबका अनेक मूल-आगम ग्रंथो और तत्संबंधी पंचांगीरूप अनेक शास्त्रीय ग्रन्थोके सदर्भ पाठोकी शास्त्रीय चर्चासे संतुष्ट करके; सत्य तथ्यके अन्वेषणकी ओर मोड़कर मन परिवर्तन द्वारा जैन धर्मके सच्चे राह पर स्थिर किया एवं दृढ आस्थावान बनाया।[३०]

वि.सं. १९२१ के मालेर कोटलाके चातुर्मासमें शास्त्रीय दृष्टि और तटस्थ मनोवृत्तिसे अपने साथियोंको तैयार करके अर्थात् सर्वेसर्वा विशुद्ध जैन धर्मानुगामी मानसधारी बनाकरके सज्ज करनेके पश्चात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय ढूढक वेशान्तर्गत ही गुप्त रूपसे शुद्ध श्रद्धानयुक्त सम्यक् धर्मके प्रचार-प्रसारके निर्धारित कार्यके लिए कटिबद्ध किये; परिणामतः इन्ही साधुओंके एकनिष्ठ-लगनयुक्त सहयोगसे भविष्यमे गतव्य स्थानको प्राप्त कर सके।

सद्धर्मकी प्ररूपणा-अमृतसरमे पूज्यजी अमरसिंहजीसे पूज्य गुरुदेवके, सत्यधर्म प्ररूपणायुक्त उपदेश विषयक-बोलचाल रूप कलहके फल स्वरूप और दिल्ही-बडौतादि-ग्राम-नगरादिमें पूज्यजी द्वारा आपके विरुद्ध किए गए प्रत्यक्ष प्रचारके कारण अब आपने प्रच्छन्न रूपसे उपदेश देना त्यागकर प्रकट रूपसे शुद्ध धर्मकी प्ररूपणा 'जिन प्रतिमा न पूजने'की विरुद्ध एवं ढूंढक परंपरा, साधुवेशादिके सत्य स्वरूपका उपदेश देना अंबालासे प्रारम्भ किया।[३१] विशिष्ट शास्त्रीय प्रमाणोंके ज्ञान प्रकाश और प्रतिभा प्राचुर्यसे जैसे शेर गर्जना करते हुए अबोध जनताकी गहरी निंद हटाकर ज्ञान गंगामें स्नान कराते हुए शुद्ध और पवित्र किया। आपके प्रवचनोसे प्रभावित अनेक लोगोने सनातन जैन धर्मको पूर्ण श्रद्धासे स्वीकारा। पंजाबका प्रत्येक क्षेत्र आपके स्वागत के लिए लालायित बना।

पूज्यजीके मेजरनामा (प्रतिवाद-पत्र) प्रकरण, भक्तोको मूर्तिपूजा विरुद्ध उकसानेके भरसक प्रयत्न, अपनी आम्नायके साधुओको न मिलने देनेका नियम करवाना, श्रावक भक्तोंको श्री आत्मारामजी म.को. गौचरी-पानी-वसति (आहार-पानी-स्थान) न देनेका आदेश---आदि हर प्रकारसे हाथ-पैर मारनेके बावजूदभी पूज्यजी अपनी डूबती नैयाको बचा न सके। श्री आत्मारामजी म.का सच्चे जिनशासनकी प्रभावनारूपी जहाज़ अविरत गतिसे ध्येय प्राप्तिकी और प्रगतिमान था। हज़ारो भाविक भक्त उसमें बैठकर भवरूप समुद्र पार करने के लिए अत्यंत उत्कंठित हो उठे थे। बचपनसे ही उल्टे प्रवाहमें तैर कर अन्योका उद्धार करने के वीरत्व और साहसपूर्ण जन्मजात स्वभाववाले श्री आत्मारामजी महाराजने अनेक विटम्बना-विरोधोके अवरोधादि आंधी-बवंडरके सामने अथक परिश्रम पूर्वक बड़ी धीरता-वीरता-गंभीरतासे हजारों ढूढक पंथके मलिन संस्कार वासित अज्ञानी श्रावकोको शुद्ध-संपूर्ण श्रद्धासे प्राचीन जैन धर्म परंपरामे प्रविष्ट करानेका श्रेय प्राप्त किया। जैसे विरोधकी हवा टिमटिमाते दीपकको नामशेष कर सकती है, लेकिन धगधगायमान अग्निको तो अधिकाधिक प्रदीप्त करनेका ही कारण बनती है। यह गौरवान्वित चित्रण निम्न शब्दोमें अंकित है- "श्री आत्मारामजीके सत्यनिष्ठ आतमबल पर अवलम्बित क्रान्तिकारी धार्मिक अंदोलनने ढूंढक मतके अभेद्य किलेको छिन्न भिन्न कर दिया.........लगभग दस वर्षके (१९२१ से १९३१) इस क्रान्तिकारी धार्मिक आंदोलनोंमे उन्हे जो सफलता प्राप्त हुई उसकी साक्षी पंजाबके गगनचुंबी अनेको जिनालय और उनके सहस्त्रो पूजारी हमे प्रत्यक्ष रूपमे दिखाई दे रहे है।"[३५]

पाखंड, शिथिलता और अविद्याके अंधकारके एक मात्र विदारक, सद्धर्मके प्रचारक और प्रसारक विरल विभूति श्री आत्मारामजी महाराजजीका यथार्थ चित्रण दृष्टव्य है---

"छूटा था देवपूजन और भक्ति भावना भी,
यह भी खबर नहीं थी, क्या धर्म है बिचारा ?

इस देशमें कही भी, कोई न जानता था, होता है साधु कैसा जिन धर्मका दुलारा ? ऐसे विकट समयमे अनेक आपत्ति और विरोधका सामना करना और जैनधर्मके सच्चे स्वरूपका प्रचार करना इसी माईके लालकी हिम्मत थी।"[३३]

तभी तो कहा जाता है कि विरोध ही महान पुरुषोकी धीरताकी कसौटी है। कई सालोसे आदर्श जैनधर्म पर सर्वेसर्वा अधिकार जमानेवाले ढूंढक पंथके बादल आच्छादित थे। उन घने बादलोको अनिलवेगी श्री आत्मारामजी म सा एव उनके वीर साथियोने क्षत-विक्षत कर बिखेर दिया

था। लोगों के अज्ञानका पर्दा हट गया था। पढे लिखे श्रद्धालु आत्मार्थी श्रावक ढूंढ़क पथका त्याग कर धड़ाधड़ जैन धर्म अंगीकार कर रहे थे। वातवरण यहाँ तक उत्तेजित हो गया था कि पूज्यजीको आहार-पानी आदि न मिलने के संभावित डरसे पंजाबसे मारवाडादि अन्यत्र विहार कर जानेके विचार आने लगे ।[३४]

ढूंढ़कमत त्याग---इस भाँति क्रान्तिकारी---बवंडर सदृश पूरजोश धार्मिक आंदोलनोमें यशस्वान् ज्वलंत विजयी, श्रावकोकी शुद्ध जैनधर्म-मूर्तिपूजादि-मे आस्थाके मूलको दृढ एवं स्थिर करनेवाले श्री आत्मारामजी म.सा. और उनके साथियोको इस शास्त्र बाह्य-घृणित कुवेश-ढूंढ़क साधुवेशका परित्याग करके किसी सुयोग्य निर्ग्रन्थ-साधुका शिष्यत्व स्वीकारनेकी आवश्यकताका एहसास होने लगा, ताकि श्रावकोंको प्रत्येक दृष्टिसे सच्ची जैन साधुताका ज्ञान हो सके। अतः वि.सं. १९३१ के चातुर्मासोपरान्त लुधियानामें सभी मिले। विचार विमर्थ करते हुए गुजरातकी ओर जानेका निश्चय किया जिससे अति विशाल जैनसंघसे भी परिचय हो सके। अथवा मानो पंजाब श्री संघकी सत्य धर्म प्रति दृढ़ आस्थाकी नीव पर अब विविध धर्मानुष्ठानोके और धर्माचरणोके विशाल और व्यवस्थित भवन निर्माणके लिए साधन जुटाने-अति दुर्गम एवं दूरस्थ स्थानोंकी तरफ प्रस्थानका निश्चय किया गया। आपके इस प्रस्थान के मुख्य तीन ध्येय हृदयस्थ थे (१) प्राचीन जैन परंपराके साधुवेशको विधिपूर्वक धारण करना (२) प्राचीन तीर्थोंकी यात्रा (३) तदनन्तर पंजाब वापस लौटकर विशुद्ध जैन परंपराकी स्थापना करना।[३५]

गुजरातमें पदार्पण---तदनुसार लुधियानासे महाभिनिष्क्रमण हुआ। मानो संसार-त्यागसे भी दुर्दम-दुर्द्धर्ष साम्प्रदायिक फिरकेबधीसे मुक्तिका शुभारम्भ हुआ। विहार करते करते मालेर कोटला, सुनाम होते हुए हाँसी जाते समय रास्तेमे एक रेतके टीले पर मुँह पर बधी मुहपत्तिका त्याग किया[३६] और हाँसी-भिवानी होते हुए मारवाड़की ओर पधारें।

जीवनमे सर्व प्रथम पालीके श्रीनवलखा पार्श्वनाथजीके मंदिरमे परमात्माके दर्शन करके अपने आपको भाग्यवान बनानेका प्रारम्भ किया। वहाँसे वरकाणा, नाडोल, नाडलाई, राता महावीर, राणकपुर, आबू-देलवाडा-अचलगढ, सिद्धपुर, भोयणी आदि अनेक मारवाड गुजरातके तीर्थोकी, आत्माको परमपावन करनेवाली और कर्मज्वालासे जलती हुई आत्माकी हुताशको शात करके कर्मनिर्जरा रूप शीतलता प्रदान करनेवाली अमोघ-अमूल्य-अद्भूत-अपूर्व यात्रा करते हुए आप सोलह साधु गुजरातके सुप्रसिद्धनगर अहमदाबाद पधारें।

आपकी धार्मिक क्रान्तिके अरुणोदयकी आभा आपसे पूर्व ही मारवाड-गुजरातादि अनेक स्थानोके श्रावकोके नेत्रोको उन्मिलित कर रही थी। वे बड़ी उत्कंठासे और आतुरतासे उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, जब आपकी ज्ञानामृत रसीली व विद्वत्तापूर्ण प्रवचनधाराका लाभ प्राप्त कर सके। आपके प्रति सम्मानयुक्त-अनूठी-अतरग भक्तिके भाव तब दृश्यमान होते हैं, जब अहमदाबादके नगरशेठ, प्रमुख श्रावकोके साथ करीब तीन हजार श्रावकोको लेकर उचित स्वागतार्थ तीन कोस तक अगवानी करने आये और बडे हर्षोल्लास एवं धूमधामसे अभूतपूर्व नगरप्रवेश करवाया[३७]। तदनन्तर

निर्मल बुद्धिसे उद्भावित, मुसलाधार बरसते मेघ जैसी अनन्य विद्वत्तापूर्ण-अर्थसभर-प्रखर प्रतिभापूर्ण, अनूठी शैलीसे परिमार्जित व्याख्यान वाणीका श्री संघने कुछ दिनो तक आस्वाद लिया।

पवित्र शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा---तत्पश्चात् प्राचीन जैन श्वेतांबर परंपराके इतिहासमें जिस शाश्वत तीर्थकी अपरंपार महिमा गायी गई है; जो अत्यंत पवित्र और महान माना गया है; जिसके उत्तुंग शिखर पर २७०० से अधिक छोटे-बडे मंदिरोंका मानो एक नगर-बस गया है, और उस नगरके राजमहल सदृश-प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेव भगवतका प्रासाद शोभा दे रहा है; जिसके लिए कवि श्री पद्मविजयजी म.सा.ने गाया है-

"कलिकाले ए तीरथ मोटुं, प्रवहण जिम भर दरिये विमलगिरि......"[३८]

"भवि तुमे वंदो रे, सिद्धाचल मुखकारी; पाप निकंदो रे गिरि गुण मनमा धारी"...[३९].

और जिस महातीर्थकी यात्राके महत्तम उद्देशको दिलमें धारण कर पंजाबसे प्रस्थान कियाथा ऐसे तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए आप अहमदाबादसे पालीताना पधारें ।

पानी लबालब भरा सरोवर बारिशके पानी से छलकने लगता है वैसे ही पुनित गिरिराज सिद्धाचलजीके नयनगम्य होते ही सभी के हर्षोल्लासकी तरंगे हिलोरे लेने लगीं। हृदय सरोवरसे भावोद्रेक छलछलाता हुआ बहने लगा और जैसे ही चिरंतन अभिलसित, प्रशमरस निर्जरते देवाधिदेव-वीतराग श्री आदिनाथजीका, उस विशाल जिनमंदिरमे दिदार किया तब अपनी सुध-बुध जैसे खो बैठे। नयनोंने पलक झपकना छोड दिया और सांस भी जैसे ध्यानमग्नतामें सहायभूत बननेके लिए स्थिर हो गई, तनका चैतन्य मानो परमात्माके चक्षुमे प्रतिबिम्बित होनेलगा और प्रतिमा-स्थित मूर्तित्व तनमे तिरोहित हो गया। ऐसे तद्रुप बने अतस्तलकी गहराईसे स्वर फूट पडे--

"अब तो पार भये हम साधो, श्री सिद्धाचल दर्श करी रे ..... ."[४०]

तीर्थका माहात्मय गाया है- "पशु पखी जहां छिनकमें तरिया, तो हम दृढ विश्वास गहयो रे .. "

उसी तादात्म्यमें लयलीन गद्गद् कंठसे दिल खोलते है--

"दूर देशान्तरमें हम उपने, कुगुरु कुपथको जाल पर्यो रे,
श्री जिनआगम हम मनमान्यो, तब ही कुपंथको जाल जर्यो रे ।
तो तुम शरण विचारी आयो, दीन-अनाथको शरण दियो रे,
जयो विमलाचल पूरण स्वामी, जनम जनमको पाप गयो रे ..."[४०]

तीर्थयात्राका फल क्या चाहते हैं-- "मुझ सरिखा निंदक जो तारो....."[४०]

अनादिकी अध्यात्म-प्यास बुझाते बुझाते ऊपर ही सारा दिन कैसे बीता इसकी भी सुध नहीं- न भूख, न प्यास; न थकान, बस एक ही लगन लगी थी--

"आत्माराम अनघ पद पामी, मोक्षवधू तिन वेग वरी रे. ...."[४०]

मन भरके मानस प्यासकी तृप्तिमे कुछ दिन पालीतानामें ही निरन्तर यात्रा लाभ लेते हुए ही बिताये। आखिर परम तृप्ति और अमिट प्यासका सम्मिलित भाव दिलमे लिए अहमदाबाद पधारें।

सभी को परम संतोष था कि जो शास्त्रीय और ऐतिहासिक संदर्भोका परिशीलन किया था,

वह शत प्रतिशत प्रमाणित है और ढूंढक मत सम्मूर्च्छिम है, जिसका भगवान महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपरामें कोई स्थान नही हैं।

इस यात्रामे यह भी अनुभूत हुआ कि तत्कालीन समाजमें संविज्ञ शाखीय साधु पीली चद्दर ही पहनते हैं। श्वेत चद्दरधारीको साधु नही लेकिन शिथिलाचारी और परिग्रहधारी यति माने जाते हैं। अतः आपने भी अपनी चद्दर पीली बना ली।

संवेगी दीक्षाप्रहण---(श्री बुद्धिविजयजी म.सा.का शिष्यत्व अंगीकार)-अहमदाबादमें पदार्पण पश्चात् तुरंत ही दूसरा ध्येय-संविज्ञ सद्गुरुसे शिष्यत्व स्वीकार करनेकी-ओर ध्यान केन्द्रित किया और सर्वानुमतसे, अपने सदृश-अजैन कुलके-पंजाबी, प्रथम ढूंढक परंपरामे दीक्षित और आगम अध्ययनोपरान्त गुजरातमे आकर शिष्यों समेत 'अविच्छिन्न वीर परंपरा'मे सविज्ञ दीक्षा अंगीकार करनेवाले-सद्धर्मके प्रचारक और प्रसारक, सर्वांग सुयोग्य, सत्यान्वेषी, क्रान्तिकारी, अत्यन्त पवित्र चारित्रवान्, शांतमूर्ति, महातपस्वी, समताधारी, नम्र और विवेकी, उदारता-सहनशीलतादि अनेकानेक गुणोपेत परम पूज्य *श्री बुद्धि विजयजी म.सा.*का शिष्यत्व प्राप्त करनेको सौभाग्यशाली बने-वि.सं. १९३२ अषाढ मास, वदि दसमी तदनुसार ई.स. १८७५-श्री आत्मारामजी से श्री आनंदविजयजी म.सा. बने। अन्य पंद्रह साधुओंका भी विजयान्त नामवाले विभिन्न नामकरण किये गए और श्री आनन्द् विजयजीके शिष्य बनाये गए।[४१]

गुरुवर्य-पू. श्री बुद्धि विजयजी (बूटेरायजी) महाराज---तत्कालीन पंजाबी जैन समाजमें से लुप्त होती जाती सत्यधर्म परंपराको, मानो मृतप्रायः जैनधर्मको संजीवनी देनेवाले धार्मिक क्रान्तिकी चिनगारी रूप प.पू. बूटेरायजी म.सा. लुधियानाके दुलवा गाँवके गिल गोत्रीय टेकसिंहजीके कुलमें माता कर्मोदेकी कुक्षिसे संवत १८६३मे उदित होकर, माताके वात्सल्य भरपूर सुसंस्कारोंसे वासित उत्तमोत्तम राहकी ओर आध्यात्मिक उन्नतिकी लगनसे कदम बढाते गये-ढूंढक दीक्षा ग्रहण की, संवत १८८८ और श्री नागरमलजीके शिष्य बने[४२] आपकी गिरिशिखर सी भव्य एवं प्रतापी देहमे गुण गौरवशाली आत्मा निवसित थी। पंजाबी खड़तर देहमे भी सुंदरता, सुकुमारता व सज्जनता दर्शनीय थे। परम त्यागी, अत्यंत निस्पृही, महायोगी, सत्य-संयमकी मूर्तिके विशाल भाल प्रदेशमें ब्रह्मचर्यका तेज़ चमकता था।[४३]

आगम बत्तीसीका अध्ययन करते करते जब आपको यह सत्यप्रतीत हुआ कि 'मुंहपत्ती बांधना शास्त्र विरुद्ध है"-उसी वर्ष बालक आत्मारामका इस धरातल पर अवतरण हुआ। यह वह समय था जब अदृष्ट भाविके गर्भमें एकही मंजिलके दो अजनबियोंको एक दूसरेसे अवश रूपसे नज़दीक लानेके प्रयत्न हो रहे थे।

असाधारण व्यक्तित्व, अद्भूत शक्ति, असीम प्रतिभा, आदर्श आध्यात्मिक जीवनके सुंदर समन्वयधारी श्री बुटेरायजी म.सा.-नम्र और मीठी जबानसे श्रुताधारित युक्तियुक्त तर्क एवं लाजवाब दलीलोसे प्रतिपक्षीको म्हात करनेवाले धर्मनेताने अनेक कष्ट और भयंकर अपमान हँसते हँसते झेले थे। श्रुताभ्याससे सत्यकी गवेषणा करके सत्यधर्मकी प्ररूपणा और प्रचार करते हुए जब आपने

ढूंढकपनेका त्याग किया, उसी वर्ष श्री आत्मारामजी म ने स्थानकवासी दीक्षा अंगीकार की। आपने जहाँ प्रकट रूपसे सर्व प्रथम मूर्तिपूजा-मंडनरूप सत्योपदेश प्रवाहित किया, वही-गुजरावालामे-आपके अनुगामी श्री आत्मारामजी म.ने अंतिम सांस ली और जिस दिन आप स्वर्गवासी हुए उसी चैत्र शुक्ल एकमको श्री आत्मारामजी म.सा.का जन्म हुआ था।[४४] आपके मूर्तिपूजा मंडनके बोये बीजको श्रीआत्मारामजी म.सा.ने तन-मन-आत्मा---सर्वस्व समर्पित करके सत्योपदेश रूप वारिराशिसे अभिसिंचित करके अंकुरित किया और विकस्वर भी। आपके पू. मूलचंदजी म आदि अन्य शिष्यवृंदभी था, लेकिन पूर्वदर्शित अनेक प्रकारसे आपसे सादृश रखनेवाले-आपके ही चरणचिह्नोंका अनुपमेय अनुसरण करनेवाले श्री आत्मारामजी म.का. सानी कोई नही था।

दीक्षानन्तर हृदयस्पर्शी सिख देते हुए श्री आनंदविजयजी महाराजजी की प्रखर विद्वत्ता और अद्वितीय योग्यता पर गौरवान्वित बनते हुए उनको प्राचीन जैनधर्मके वैभवको प्रमाणित करनेवाली प्रतिभा सम्पन्न गिरासे उन्नत जिनमंदिरोंकी और उनके पूजकोंकी सुध लेनेके लिए प्रेरित किया। आपभी गुरु महाराजके हार्दिक आशिर्वादसे उल्लसित बनकर घने बादलोसे घिरे जैनधर्मको उन बादलोंसे मुक्त-प्रकाशित उज्ज्वलता प्राप्त करवाने हेतु उन घने जलदको क्षत-विक्षत करनेके सपने संजोने लगे।[४५]

संयमचर्या-धर्मप्रचार-शास्त्रार्थ हेतु विचरण---आपका अहमदाबादका, प्रथम चातुर्मास, ऐतिहासिक एवं यादगार रहा। विशेषकर इस चातुर्मासमे आयोजित श्री शांतिसागरजीके साथ, उनके एकान्त पक्ष (इसकालमें सच्चे साधु और श्रावक धर्मका पालन नही किया जा सकता; इसलिए न तो कोई सच्चा साधु है न श्रावक) का प्रलाप बंद करवाने हेतु शास्त्रार्थमें विजयश्री वरके आपने उनके उपदेश-दावानलसे संतप्त जैन समाजको मानो पुष्करावर्तके मेघ-सी अपूर्व शांति प्रदान कर अपने कीर्तिकीरिटमें एक हीरेकी वृद्धि की।[४६]

चातुर्मास पश्चात् सिद्धाचल-गिरनारादि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए चातुर्मास हेतु भावनगर पधारें। इस चातुर्मासमे वहाँ के राजा साहबके निवास स्थान पर उनके ही आर्य समाजी गुरु श्री आत्मानदजीके साथ 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'-पर आधारित वेदान्त चर्चा; 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'-में समन्वयात्मक निश्चय और व्यवहार नयाश्रित समाधान करके सबको सानंदाश्चर्य और संतुष्टि प्रदान की।[४७] चातुर्मासोपरान्त पालीताना पंचतीर्थ एवं गिरनारादिकी तीर्थयात्रा श्री संघके साथ करके, पंजाबकी धरती पर नवपल्लवित होते हुए पौधेकी सुध लेनेके लिए आप पंजाबकी ओर मूड़े। रास्तेमें तारंगाजी-आबू-पंचतीर्थ की यात्रा करते हुए पाली पधारे। यहाँ चातुर्मासके लिए जोधपुर श्री संघकी विनती होने पर चातुर्मास जोधपुर किया। व्याख्यान वाणीकी बागडोरके ईशारे उन्मार्गगामी संघको सन्मार्गगामी बनानेका श्रेय प्राप्त करते हुए जैनधर्मकी डाँवाडोल-सोचनीय परिस्थितिको स्थिरता प्राप्त करवायी।[४८] तदनन्तर आप दिल्ही होते हुए अंबाला पधारें।

यहाँ आपके शास्त्रविहित साधुवेशके दर्शनका यह अवसर अत्यंत अनुमोदनीय था। इस भावानुप्रणित द्रव्य साधुतासे सभी अत्यधिक प्रभावित हुए। भक्तोने अनुभव किया जैसे, 'उनके

स्नेहशील पिता उनके लिए अनमोल उपहार लिए उनकी सुध लेनेके लिए वापस आये हो'।[४९] प्रतिदिन विभिन्न स्थानोमें विचरण और प्रभावक प्रवचनो रूपी मार्गदर्शनके कारण पूर्वके श्रावकोंकी आस्था दृढ़ीभूत हुई, कई नये श्रावक और साधु भी बने। पजाबके इस पॉच वर्षके विचरणने पूर्वके अपूर्ण कार्यको वेगवान बनाते हुए शुद्ध सत्यधर्मके प्रचार-प्रसारका शंख फूंककर सोयेको जगाया, जागेको उठाया-आगे कदम बढ़ानेको प्रेरणा की।

प्रथम चातुर्मासोपरान्त लुधियानामे फैली जीवलेवा-ज्वरकी बिमारीने आपके शिष्य श्री रत्नविजयजी म.का भोग लिया और आपको भी चपेटा देकर बेहोश बना दिया। घबराहटमे चिंतित श्री संघ द्वारा आपको अबाला ले जाया गया। चिकित्सा अनंतर आप स्वस्थ बने और चारित्र धर्ममें लगे दोषका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध बने।[५०]

साहित्य सृजन---उन दिनो ज्ञान-शून्य-भ्रान्त जनताके मनोमालिन्यकी शुद्धिके लिए अपनी लेखिनीको मुखरित करते हुए, मौखिक उपदेशकी अपेक्षा बहुव्यापक एवं चिरस्थायी बनने योग्य उपदेशको अक्षरदेह रूप "*नवतत्व सग्रह*", "*जैन तत्त्वादर्श*" जैसे ग्रंथोकी रचनाको प्रकाशित करवाया-जो जैन धर्मके वास्तविक मूल सिद्धान्तोको समझानेमे अत्युपयोगी सिद्ध हुए। आर्य समाज-संस्थापक श्री दयानंद सरस्वतीजीके '*सत्यार्थ प्रकाश*'मे की गई जैनधर्मकी झूठी प्रतारणाके प्रत्युत्तर रूप '*अज्ञान तिमिर भास्कर*' ग्रन्थकी रचना की। पजाबके प्रभु-प्रतिमा-पूजन विधिसे अनभिज्ञ जैनोंके लिए हिन्दीमे '*सत्रहभेदी पूजा*' की रचना की।

विशुद्ध जैन परंपरामे दीक्षित होनेके पश्चात् आपने पंजाबमे *अंबाला शहर*, *लुधियाना*, *जंड़ियाला*, *गुजरांवाला*, *होशियारपुर*-मे पाँच चातुर्मास करके और अन्य नगर-ग्रामोमें विचरण करके जो क्रान्तिकारी धार्मिक आंदोलन चलाया उसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। प्रभु पूजा-प्रभावनादिके निरंतर प्रचारसे सहस्त्रो श्रावक-श्राविकाके दिलमे शुद्ध श्रद्धा जागृत करके मानो वर्षोंसे रूठी जैनश्रीको पुनः अनुपम हृदय सिंहासन पर स्थापित किया।[५१]

इस तरह कार्यसिद्धि करके अनेक नवदीक्षित साधुओके छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान करवाने के लिए, इसके अधिकार-प्रदाता-गणि श्री मुक्ति विजयजी म.सा. अहमदाबादमें बिराजित होने से, पुनः गुजरातकी ओर चल पड़े। हस्तिनापुरादि तीर्थयात्रा करते हुए बिकानेर चातुर्मास करके जोधपुरादि स्थानोमें परिभ्रमण करते करते गुजरातकी ओर विहार किया।

विभिन्न लाभालाभयुक्त मारवाड-गुजरातकी यह अंतिम विहार-यात्रामें- *बीकानेर*, *अहमदाबाद*, *सुरत*, *पालीताना राधनपुर*, *महेसाणा*, *जोधपुर*-के सात वर्षावासमे नये कीर्तिमान स्थापित किये, तो साथमे हृदय हिलादेनेवाली बडी भारी चोटभी खाई। लेकिन वीतराग पथका यह पथिक नम्रता और समतासिक्त स्थित-प्रज्ञताके साथ कर्तव्य पथ पर आगे कदम बढ़ाता ही गया।

गुजरात प्रवेश पूर्वही पालीमे श्री लक्ष्मीविजयजी म.का और गुजरातसे प्रस्थान पश्चात् दिल्हीमे आपके प्रिय प्रशिष्य श्री हर्षविजयजी म.का. कालधर्म* हो गया। तो राधनपुरमे बड़ौदाके लाडीले नवयुवक श्री छगनभाईने आपके चरणोंमे जीवन समर्पित किया-छगनभाई बन गए मुनि वल्लभ-

जो विश्व वल्लभ बनकर आपके भावि उत्तराधिकारी बननेका सौभाग्य लिए हुए थे, एवं जो हर्षविजयजी म.के शिष्य और श्री लक्ष्मीविजयजी म.के प्रशिष्य थे। फिरभी आप स्थितप्रज्ञ रहकर कार्यान्वित बने रहें।

अहमदाबादके चातुर्मास बाद आपने पालीताना पधारकर मुख्य-मुख्य श्रावकोकी सम्मति और सहयोगसे वहाँके पैंतीस प्रभावशाली-चित्ताकर्षक जिनबिम्बोकों एव अहमदाबादादि विभिन्न स्थानोमे से कुल १५० प्रतिमाजी पजाबके विभिन्न नगरोके लिए भेजे, जो आपकी गुजरात यात्राकी उत्तम उपलब्धि मानी जा सकती हैं।

आपके इस विहार दौरान सुरतके चातुर्मासमें आपके कलाकार-रूप व्यक्तित्वमे निखार आता है। आपकी कल्पनाके पंख उडान भरने लगते हैं और मंझिल तय होती है "*जैन-मत-वृक्ष*"के अनूठे-धार्मिक, ऐतिहासिक, राजकीय वृत्तोको मूर्तिमंत करनेवाली उत्तमोत्तम कलाकृतिके रूपमें। जिस कालमे धार्मिक-ऐतिहासिक वृत्तोकी छान-बीन या परंपराओके चित्रण नगण्य थे अथवा जन मानसकी वृत्ति ही उस ओर नही थी, वहाँ ऐसी कल्पना युक्त रंगीन कलाकृतिका प्रस्तुतीकरण वाकई अमूल्य और अनुपमेय था।

ज्ञानोद्धार अर्थात् ज्ञानभक्ति---ज्ञानोपगरण और ज्ञानके प्रति आपके अंतरका हार्दिक सम्मान दृष्टिगोचर होता है, जब आप खंभात-पाटण-महेसाणा आदि धर्म-स्थानोंके प्राचीनं ग्रंथ भंड़ारोका निरीक्षण करते हुए अघाते नहीं। वहाँकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रत एवं पुस्तकोके जिर्णोद्धार के लिए महेसाणामे कायमी फंड़योजना, ग्रथोका पुनर्लेखनादि कार्य उनके अनन्य ज्ञान प्रेमके प्रतीक हैं। पाटण ज्ञानभड़ारोके पुनरुद्धारका कार्य शिष्यो-प्रशिष्योको सौंपकर इस दिशामे नया कदम उठाया।

'स्व' उन्नतिके साथ 'पर'का भी खयाल आपके हृदय कमलमे था। 'उपासक दशांग' सूत्रके संपादक और अनुवादक-रोयल एशियाटिक सोसायटीके मानद सचीव डॉ. होर्नलकी शास्त्रीय पदार्थो आदिके बारेमे संदिग्धता और शंकाओका स्पष्ट, शास्त्राधारित एवं तर्कबद्ध सचोट प्रत्युत्तर रूप मार्गदर्शन देकर उनका हार्दिक प्रेम सपादन किया था, फल स्वरूप उन्होने अपना ग्रंथ आपके नाम, सुंदर प्रशस्ति रूप पुष्प परिमल सह समर्पित किया।[५२]

अहमदाबादमे श्री जेठमलजी रिखकी '*समकित सार*' पुस्तकके प्रत्युत्तरमे "सम्यक्त्व शल्योद्धार"की रचना की, तो सुरतमें हुक्म मुनिके आगम विरुद्ध '*अध्यात्म सार*' पुस्तकको प्रश्नोत्तर रूप पड़कार फेककर भारत वर्षके विद्वानो द्वारा उसे अमान्य ठहराया। पाटणमे तीन स्तुतिवालोको ललकारते हुए "*चतुर्थ स्तुति निर्णय*"की रचना की। इनके अतिरिक्त आराधना हेतु "*बीस स्थानक पूजा*", "*अष्ट प्रकारी पूजा*", "*स्नात्रपूजा*" आदिकी रचना की। गद्य रचनाओंमें आपके अजेय वादित्वके दर्शन होते हैं तो पद्य रचनाओमें समर्पित भक्त हृदयके भाव विशिष्ट संगीतज्ञकी कवित्व शक्ति द्वारा प्रस्फूटित होते अनुभूत होते हैं।

शास्त्रीय चर्चा-जैन सिद्धान्तोकी सिद्धि एवं पुष्टि---बिकानेर नरेश और उनके संन्यासी महात्माके दिल---जैन दर्शनकी नीव रूप स्याद्वाद एवं अनेकान्तवादकी व्यापकता और प्रमाणिकताको लेकर

अनेक जैन-जैनेतर ग्रन्थोके संदर्भ सहित विचार-विमर्श करके अवर्णनीय प्रसन्नतासे भर दिए।[53] तो जोधपुर नरेशके भाई प्रतापसिंहजीको "जैनधर्ममें आस्तिकता-नास्तिकता और मोक्षका स्वरूप" एवं जैनधर्मके 'अनीश्वरवाद'का नीरसन-विविध शास्त्राधारित खंडन-मंडन युक्त विशद विवेचन करके प्रभावित करते हुए आपके सत्य और शुद्ध विचारोका स्वीकार करवाया;[54] और लिंबडी नरेशके संस्कृतज्ञ विद्वान पंडितोसे संस्कृतमे और लिंबडी नरेशको सरल हिन्दी भाषामे गंभीर, मार्मिक, तलस्पर्शी वाणीसे शास्त्रोक्त संदर्भ सहित 'ईश्वर-सृष्टि-कर्ता'का विरोधकरके, ईश्वरको ज्ञाता रूपमे सिद्ध करके उनके मनका उचित समाधान किया।[55] आपकी परम मेधा और अपूर्व दर्शनिक पांडित्यके चमकार हम पग पग पर पाते हैं।

जीवनका अनमोल उपहार-(सूरिपद प्राप्ति)---इस यशोमंदिरके स्वर्णिम शिखर सदृश उत्तमोत्तम यश प्रदाता अवसर पालीतनाके चातुर्मास पश्चात् अपरंपार उल्लास बीच संपन्न हुआ। यतियोके वर्चस्वको चौपट करनेवाले, अजयेवादी, तार्किक शिरोमणि, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न-जैन संघकी विभूति-चुंबकीय व्यक्तित्वके स्वामी, महामना मुनिराज श्री आनंदविजयजी महाराजके नम्र और निर्मल अंतःकरणकी सम्पूर्ण अनिच्छा होते हुए भी यतियोके रहे-सहे वर्चस्वको समाप्त करने हेतु; यति समाजकी चुनौतिके प्रत्युत्तर रूप-विकट परिस्थितिमें श्री संघकी मान-प्रतिष्ठा स्थिर रखने हेतु; एवं ढ़ाईसौ वर्षोंसे सूरि-सिंहासनकी रिक्तता पूर्ति हेतु की गई भारत वर्षके समस्त जैन-संघोकी श्री पंचपरमेष्ठि•मे तृतीय स्थान स्थित सूरिपद स्वीकारनेकी हार्दिक विनतीको अवधारण करते हुए धर्मवीर-ज्ञानवीर-चारित्रवीर-आपने, यशकीरिट कलगी स्वरूप, संविज्ञ श्वेताम्बर आम्नायके महान-उत्तरदायित्वपूर्ण आचार्यपद गौरवको गौरवान्वित करनेका श्रेय प्राप्त किया, मानो सूरिपदका ढाई सदियोसे प्रसुप्त पुण्य जाग उठा।[56] साधु समाजका विलुप्त अधिकार पुनः प्रकाशित हो उठा।

आपने देखा कि समाजके उद्दीप्त उल्लासके जोशको थोडे समयके लिए भी रोक पाना अति दुष्कर है, और पूर्वाचार्योमे भी बिना योगोद्वहनके पदस्थ होनेकी एक परंपरा प्राप्त होती है। अतः आप आचार्यपद योग्य योगोद्वहन• किए बिना ही शासन सम्राटका प्रतीक सूरिराजका ताज़ धरकर मुनिराज *श्री आनंदविजयजी से श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी* नामाभिधान् भगवान महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपराके तिहत्तरवें स्थानको शोभायमान करनेके लिए भाग्यवान बने[57] और पश्चात्वर्तियोंको भाग्यवान बनने-बनवानेके दरवाजे खोल दिए। (हाँलाकि आपने अपने आप किसी शिष्यको आचार्य पद नहीं दिया)

इन्ही भावोको श्री जयभिक्खुजी इस तरह व्यक्त करते हैं- "इस सूरिपद पर अन्य बातोकी तरह यति और श्री पूज्योंने कब्जा कर लिया था। प्रतिष्ठा, योगोद्वहन, दीक्षा प्रदान परभी उनकी नागचूड थी। वह तभी टूट सकती है जब प्रतिष्ठा करा सके, योगोद्वहन करा सके, दीक्षा दे सके ऐसे आचार्य संविज्ञ साधुओंमे हो। इस कारणसे प्रबल पुरुषार्थी श्री आत्मारामजी महाराजने अगवानी की। वि.स. १९४३मे पालीतानामे श्री संघ समक्ष आचार्य पद लेकर हिम्मतसे जाहिर किया कि आगमके योगोद्वहन किये बिना भी विद्वान और चारित्रशील साधु आचार्यपद प्राप्त कर सकते है। उस कालमे यह एक महान क्रांति थी।"[58]

आपके पुण्य प्रचयके पीठबल एवं एकसे बढ़कर एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासनसेवाके उत्तम अवसरोचित कार्योंसे जिनशासनका सूर्य अपनी पूर्ण शान-शौकतसे चमकने लगा। 'सोनेमें सुहागे' सदृश जोधपुर निवासियोंने आपको आग्रह पूर्वक विशिष्ट बिरुद 'न्यायांभोनिधि' से नवाजित किया। तबसे आपने '*न्यायम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.*'के शुभ नामसे प्रसिद्धि पायी।[५९]

परमप्रिय मातृभूमि पंजाबकी पुकार आपको बरबस अपनी ओर खिंच रही थी। 'चकोरको चंद्रिकाकी कशिश' या 'कमलिनी को चंद्रकी आश' समान ही श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वजीकी हृदयतंत्रीका तालमेल पंजाबके भाविक भक्तोंके दिलसे जुड़ा हुआ होनेके कारण-दिनभर चारा चरकर शामको निजस्थान पर पहुँचनेके लिए लालयित रहनेवाले पशु-पक्षी सदृश आचार्यदेव भी पंजाबकी ओर उमड़ते हुए भावोद्रेकके साथ खिंचे चले आते हैं।

पंजाबी वनराज गुजरात-मारवाड़में गर्जते हुए और सब पर अपनी धाक जमाते हुए, सभी पर अपना रुआब छोड़कर वापस पंजाबकी ओर मूड़ता है। अब आपका लक्ष्य है बाल-मानस भक्तोंकी सुधे लेकर उनको दिलोजानसे रत्नत्रयीकी आराधनामें स्थिर करना। जैसे, अत्यन्त कष्ट झेलते हुए प्रसुत संतान के पालन पोषण व शिक्षा संस्कारके प्रति ममतामयी माता-स्नेहकी साक्षात् प्रतिमा-उदासीन नहीं रह सकती, वह तो हर प्रकारसे प्रयत्न करती ही रहती है अपने अंगजके सर्वांगिण विकासका और वृद्धिका-तुष्टि, पुष्टि, संतुष्टिका।

यह समय था, जब जैन दिवाकर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा., अपने प्रतिभापूर्ण प्रभावकी प्रखर रश्मियाँ फैलाकर सर्वत्र सर्वको तेजोमयता प्रदान कर रहे थे। आपके पंजाबमें पदार्पण होते ही पंजाबी-जैन समाजके उद्धारके विभिन्न कार्यक्षेत्रोंमें संचरणके चक्र गतिमान हुए। तदन्तर्गत रत्नत्रयीकी आराधना करके करवाके उनका सर्वदेशीय सम्मार्जन और संवर्धन करके रत्नत्रयीकी आराधनाको उन्नतिकी ओर अग्रसर किया। सम्यक् दर्शनको निर्मलतर करते हुए आपने श्री जिन-प्रतिमा एवं श्री जिन-मंदिरोंके अंजनशलाका और प्रतिष्ठा महोत्सवके कार्यक्रम विभिन्न स्थानो पर आयोजित करवाये-यथा-वैशाख शुक्ल-६, वि.स.१९४८ को अमृतसरमे भगवान श्री अरनाथजीकी,[६०] एवं उसी वर्ष-१९४८ बसन्त पंचमी को होंशियारपुरमें भगवान श्री वासुपूज्यजीकी[६१] और मृगशिर शु. १५-१९५२को अम्बालामें भगवान श्री सुपार्श्वनाथजीकी[६२] प्रतिष्ठायें बड़ी धूमधामसे करवाई, साथ ही साथ, जीरामें १९४८ मौन एकादशी* के दिन श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथजीकी;[६३] १९५१-माघ शु.१३को पट्टीमें भ श्री मनमोहन पार्श्वनाथजी[६४] एवं १९५३ वैशाख शु. १५को सनखतरामें श्री आदिनाथजी[६५] भ. आदि अन्य अनेकों जिनबिंब समेत अंजनशलाका-प्रतिष्ठा करवायी।

सम्यक् ज्ञानकी विशुद्धिके लिए १९४८में पट्टीमें 'चतुर्थ स्तुति निर्णय', 'श्री नवपदजी पूजा'; १९४९में अमृतसरमें 'चिकागो प्रश्नोत्तर'; १९५०में जंडियालामें 'श्री स्नात्रपूजा'; १९५१में जीरामें 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'ईसाई मत समीक्षा', 'जैन धर्मका सवरूप'[६६] आदि अनेक ग्रंथोकी रचना करके हिन्दी जैन

साहित्यको समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त सैंकडों प्राचीन ग्रन्थोंको भंडारोंसे निकलवाकर उनकी नकलें करवायीं और उनका वाचन एवं सशोधन किया, जिनमें निम्नलिखित ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं-शब्दाम्भोनिधि-गंधहस्ति महाभाष्य, वृत्ति-विशेषावश्यक, वादार्णव, सम्मति तर्क, प्रमाण प्रमेय मार्तंड, खंडनखंडखाद्य-वीरस्तव, गुरु-तत्त्व विनिर्णय, नयोपदेशामृततरंगिणि वृत्ति, पंचाशक सूत्रवृत्ति, अलंकार-चूड़ामणि, काव्य प्रकाश, धर्मसंग्रहणी, मूलशुद्धि, दर्शनशुद्धि, जीवानुशासन वृत्ति, नवपद प्रकरण, शास्त्रवार्ता समुच्चय, ज्योतिर्विदाभरण, अंगविद्या इत्यादि.......[६७]

इस तरह अपनी लेखिनीको मुखरित करनेके साथ साथ वाद-विवाद और विचारविमर्श या चर्चाओं द्वारा अनेक जीवोंको प्रतिबोधित करते हुए जिनशासनकी महती सेवामें यथायोग्य योगदान दिया-यथा-अंबालामें अनेक जैन-जैनेतर शास्त्रोंके संदर्भयुक्त विवेचनसे जैनदर्शनकी ईश्वरवादीता अथच आस्तिकताको मंडित करते हुए आर्य समाजी पं.लेखारामजीको संतुष्ट किया;[६८] तो लुधियानाके कट्टर आर्यसमाजी और प्रखर प्रचारक ब्राह्मण युवक कृष्णचंद्रजीको आपकी तर्कबद्ध-तेजस्वी ज्ञानज्योतिने आजीवन आपका अनन्य चरणोपासक और जैन दर्शनके प्रति दृढ़ आस्थावान बना दिया;[६९] और मालेरकोटलाके लाला गोंदामलजी, जीवामलजी आदि अनेक जैनेतरोंको मूर्तिपूजक जैन बनाया;[७०] साथमे मुन्शी अब्दुल रहमानको 'भिक्षावृत्ति'-यह परोपकार परायण साधुओंका शास्त्रोक्त आचार है, ऐसा समझाकर आजीवन मांस-मदिरादिका सर्वथा त्याग करवाया;[७१] जबकि रायकोटमें जैन-जैनेतर समाजमें वेधक व्याख्यान वाणीसे उपदेश देकर धर्मबोध करवाया और मूर्ति पूजाका प्रचार किया।[७२] जालंधरमें आर्य समाजी ला. देवराज और मुन्शीरामको 'ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वका' खंडनकर-साक्षी रूपका मंडन करके 'कर्म ही जीवके लिए फल प्रदाता' किस तरह है और 'इश्वर फल प्रदाता' क्यों नहीं-इन बातोंका तर्कबद्ध समाधान दिया[७३]

सम्यक् चारित्रकी निरतिचारपने परिपालना करते हुए, चारित्रवान्-संयमके खपी ऐसे साधकोंकी साधनामें सदैव तत्पर रहे हैं। संयमकी ईच्छुक बहनको १९५१में जीरामें दीक्षा देकर 'श्री उद्योतश्रीजी' नामसे घोषित किया[७४] और १९५०में पट्टीमें अपने साथके नवीन साधुओं को छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान किया, जिनकी उन्हीं दिनोंमें दीक्षा हुई थी[७५]

इस प्रकार अनेक ग्राम नगरोके हज़ारों नरनारियोंको "ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः"[७६] के स्वरूपको समझाकर आत्म कल्याणकारी "सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"[७७] रूप प्रशस्त मार्गकी ओर प्रेरित करके स्व-परके सम्यकत्वको शुद्ध करनेका सफल प्रयत्न आजीवन करते रहें। इन सबके केन्द्रमें जीवनके प्रत्येक पलको पूर्ण रूपसे आत्मिक कल्याणरूप कर्म निर्जराकी सम्यक् आराधनामें बिताने के लिए यथाशक्य और यथाशक्ति पालन करने-करवानेकी मनोभावना झलकती है।

बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी का गुणावलोकन (नवयुग निर्माता) :-

"शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे"
माधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ।।"

जैसे हर पर्वतमे माणिक्य रत्न नहीं होता, न प्रत्येक हाथीके कुंभस्थलसे मोती ही झरते

है; न सर्वत्र साधु होते है, न प्रत्येक वन चंदनका होता है,। अतः प्रत्येक जीव मनुष्य नहीं होता, न प्रत्येक मनुष्य संत होता है; सभी संत सच्चे साधुत्वयुक्त नहीं, न सभी सच्चे साधु सदैव युगनिर्माण कर सकते हैं। लाखो-क्रोडोमे एक होता है 'नवयुग निर्माता', जो स्वात्म कल्याणके साथसाथ निःस्वार्थ भावसे परोपकारमे अहर्निश मशगूल रहे ताकि सामान्यजनोंको अंधकारसे प्रकाशकी ओर, अज्ञानसे ज्ञानकी ओर, अधःपतनसे उत्थानकी ओर, एवं उत्क्रांतिसे संक्रातिकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दे सके।

नवयुग निर्माता---जिस समय सभी गहरी निंदकी मदहोशीमे मस्त होते हैं, वह मार्गका निर्माता, पथ-प्रदर्शक और जन साधारणका नेता-सर्वतोमुखी प्रतिभाका स्वामी, सत्य क्रान्तिका मशालची, तत्कालीन युगका महारथी-मानों अंधकारकी काजलकाली कादम्बरीमें अपने सात्त्विक एवं आत्मिक शस्त्रों पर पानी चढ़ाता रहता है; क्योंकि केवल तत्त्वज्ञानी या उपदेशक 'नवयुग निर्माता' नही बन सकता। श्री सुशीलजीके शब्दोमे- "ऐतिहासिक प्रमाणकी आवश्यकता पर इतिहासका भंडार खोल दे, शास्त्रीय युक्तियाँ या न्याय विषयक जरूरत पडे तो शास्त्रीय एवं न्यायकी तर्कबद्ध-अकाट्य पंक्तियाँ सम्मुख रखे; तुलनात्मक शैलीसे यदि किसी नवीन रचना निर्माण करनी पडे तो भी वह पीछेहट न करे, सामान्य जन देख सके ऐसी विधि-आचार-मर्यादा और अन्य क्रियाओमें सबके अग्रणी रहे - वही नूतन और पुरातन युग मध्य अटूट सेतु बन सकता है या नवयुगको निमंत्रण दे सकता है।"[७५]

समाज कल्याणके साक्षात अवतार---नूतन धार्मिक उत्क्रान्तिसे गठित हुआ आपका जोशीला व्यक्तित्व, तत्कालीन राष्ट्रीय-सामाजिक-धार्मिक अशांति, अविश्वास, अव्यवस्थाके फलस्वरूप व्युत्पन्न हिंसाके तांड़वसे संत्रस्त हुआ। यतिवर्ग-संविज्ञ साधु और ढूंढक आम्नायोंके मध्य, कुसंप-शिथिलाचार-शास्त्रीय उटपटांग विचार-आचारोमें गोते खा रही अबूध-जैन जनताको देखकर श्री आत्मारामजीकी अंतरात्मा जैसे चित्कार कर उठी। उसी कसकने आपको कमर कसने पर मजबूर किया। आपने प्राणोसे प्रिय-संपूर्ण सत्य स्वरूप-जिनशासन और उसके अनुयायी वर्ग-जैनोके उद्धारमें अपने जानकी बाज़ी लगा दी। एक अति ही सुव्यवस्थारूढ़ सुधारक-क्रान्तिकार-युगनिर्माताके रूपमे हमारे सामने पेश होते हुए आपने एलान किया, "रूढियोंको मै तपागच्छकी समाचारी माननेको तैयार नही हूँ"।[८०] श्री पोपटलाजी के शब्दोमे "आत्मारामजीने खास नया कुछ नही किया, पर पुराने-अच्छेको सभालकर, निरर्थक और निर्बलको तोड़कर उसके स्थान पर नया बांधकाम आवश्यकतानुसार कर लेने का सबल प्रयास किया है।"[८१].

एक महान विप्लववादी सदृश गतानुगतिक संकुचितता और व्हेम, अचलासनारूढ एवं प्राणशोषक कुरूढियाँ व गलत मान्यताओंके गहन अंधकारको आपने अनेकानेक शास्त्राधारित युक्तियुक्त प्रमाणोंसे भरपूर शुद्ध शाश्वत धर्मके सिंहनादसे विदारा-मानो एक कुशल सर्जन डॉक्टरने जैन समाजके सड़ित-गलित अंगोका ओपरेशन करके एक मृत-तुल्य मरीज़को उबार लिया अथवा जैसे किसी निष्णात इन्जिनियरने जर्जरित ऐसे जैन सामाजिक महलके तूटे-फूटे खंड़हरको गिराकर उसी मज़बूत नीव पर नवनिर्माण किया और 'कथिरसे कंचन' करनेकी कलायुक्त, अजीबोगरीब नूतन कलाकारने सुंदर सदन सजानेकी भरसक कोशिश की। जैनोको स्वकर्तव्य सन्मुख होना सिखाया।

जैनोंकी पतितावस्थाका मूल और गूढ कारण व्यक्त करते हुए आपने अपने '*अज्ञान तिमिर*

भास्कर' ग्रंथमे निर्देश किया है कि, अन्य कार्योमे लाखो रुपये खर्चनेवाले इन जैनोमें विद्याके प्रति अरुचि एवं सम्यक् ज्ञानकी अज्ञानताका व्याप ही मुख्य है। इस सूक्ष्मताकी ओर केवल अंगूलीनिर्देश ही नही किया लेकिन इसके उद्धारके लिए शिक्षाके प्रचार एवं ज्ञान भंडारोंकी व्यवस्थादि रूप चिकित्सा भी दर्शायी है।

जैनोके साधर्मिक वात्सल्यका विश्लेषण करते हुए "*जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर*" ग्रंथमे मार्गदर्शन करते हुए आप लिखते हैं कि- "श्रावकका बेटा धन हीन या बेरोजगार हो उसे रोजगारीमे लगाना या उसे जिस कार्यमे सिद्दत हो-आवश्कता हो-उसमे मदद करना सच्चा साधर्मिक वात्सल्य है। साधर्मिकोको सहाय करनेकी बुद्धिसे जिमाना (भोजन कराना) यह सच्चा साधर्मिक वात्सल्य है अन्यथा वह 'गधे खुरकनी' मानी जायगी।"[८२] इस तरह समाजकी चेताको जागरूक और स्वस्थ बनानेके लिए आपके प्रयत्न निरंतर होते रहते थे। धर्म सद्भावके जीवन्त प्रतीक-आपका जीवन ज्ञान-ध्यान लीन और आपका आचार्यत्व लोकमंगलकी भावनासे प्रदीप्त था।

युग निर्माणकी महत्त्वपूर्ण कूंजी घूमाते हुए आपने सामाजिक एकताका ताला खोल दिया। ऐक्यमें छिपी प्रचंड ताकातसे पूरे समाजको अभिज्ञ किया। श्वेताम्बर समाजके अखिल भारतीय संगठनको दृष्टिगत रखते हुए आपने सुरतके चातुर्मास-वि.सं. १९४२-में 'दि जैन एसोशियेशन ऑफ इन्डिया, बम्बई' के कार्यकर्ताओंको अपने सहयोगका संपूर्ण विश्वास दिलाया था। इसके अतिरिक्त अमृतसर-श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर आपने सबको उद्बोधित करते हुए कहा कि, "पारस्परिक एकतामे लाभ है और इसीमे शक्तिका रहस्य है। .... स्मरण रहे, शास्त्रकारोंने श्री संघका पद बहुत ऊँचा किया है। श्री संघके सामने प्रत्येकको मस्तक झुका देना चाहिए। धनवान और शक्ति सम्पन्न भाइयोका परम कर्तव्य है कि, वे अपने साधनहीन भाइयोंकी यथासंभव सहायता करे। गुजरात-सोराष्ट्रके भाइयोंने पंजाबमे मंदिर निर्माण और पुस्तक भंडार स्थापित करने मे सहायता देकर एक अनुकरणीय आदर्श आपके सम्मुख उपस्थित किया है।"[८३] उसी प्रतिष्ठावसर पर आपने धार्मिक एवं सामाजिक महोत्सवों या प्रसगों पर होनेवाले आडम्बर, झूठे दिखावे आदिमें होनेवाले फिज़ूल खर्चको रोकनेके लिए भी प्रेरणा दी और सादगी एवं संयमितताके पथ पर कदम बढ़ानेके लिए सभीको आकृष्ट किया।

एक कदम आगे बढ़कर तत्कालीन सामाजिक दूषण-बाल विवाह और विधवा विवाहको दर्शित करते हुए आगमिक स्पष्टीकरण दिया हैं-- "आचार दिनकर"-ग्रन्थमे आठसे ग्यारह वर्षकी लडकीके विवाहको कथित किया है, वह प्रायः लौकिक व्यवहारके अनुसार है। जैनागमोमे तो 'जोव्वणगमणमणुपत्ता' इति वचनात् वर कन्या योवनको प्राप्त हो तब विवाह करना लिखा है। 'प्रवचन सारोद्धार'मे सोलह वर्षीय कन्या और पच्चीस वर्षीय पुरुषके संयोगसे उत्पन्न सतान बलिष्ठ बतायी है। इत्यादि मूलागमसे तो बाल लग्न और वृद्ध विवाहका निषेध सिद्ध होता है।"[८४]

होशियारपुरके 'जैन स्वर्णमंदिर'की प्रतिष्ठाके सुअवसर पर भी आपने फरमाया "बाल विवाह और पर्देकी कुप्रथा मुस्लिम शासनकालमे प्रचलित हुई। इसके पहले इसे कोई जानता न था। अब वह समय व्यतीत होचूका है। इसलिए उन प्रथाओंको भी विदा कर देना उचित है। बाल विवाह सर्वनाशका कारण है। इससे मस्तिष्क और शरीरका विकास रूक जाता है-व्याधियाँ होती हैं। जबतक वीर्य परिपकव न हो, पढाई समाप्त न हो, विवाह न करे"।

सहृदयी उदारता और विशालता---धार्मिकताकी कट्टरताके उस युगमें विशाल हृदय जलधिमें, प्रेमल और अन्य धर्म प्रति उदारता एवं सहिष्णुताकी लहरें आपके उद्‌बोधनों वार्तालाप एवं साहित्यमें तरंगित होती अनुभूत होती हैं, जो आपने प्राप्त की हुई जैनधर्मकी देनरूप गुणानुरागिता और गुण पूजाके श्रेष्ठतम आदर्शोंका परिपाक हैं। कुल-जाति-देश-धर्मके मतमतांतरोंको लांघकर आपने घोषित किया कि, "सच्चरित्र ही सच्ची मनुष्यताका मापदंड है।..........कोई पुरुष या स्त्री, किसी भी जाति या धर्मका क्यो न हो, जो ईच्छा निरोधपूर्वक शीलका पालन करता है वही श्रेष्ठ गिना जाता है।"[८५]

आपके दिलमे केवल जैनधर्मकी उन्नति और समुत्थान की ही लगन नहीं थी, लेकिन सारे समाजके अभ्युदयकी उत्कट आकांक्षा थी। आपके ही शब्दोमें- "जैसे अयोग्य भूमिमे बोया बीज फलीभूत नहीं होता और विना नीवका भव्य प्रमाद स्थिर नही होता वैसे विना योग्यताके, साधु या गृहस्थ धर्म भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए सभी भिन्नभिन्न मतावलम्बियोंको चाहिए कि वे अपनी जाति और अपने मतकी बुराइयोको त्याग करते हुए अपनेमे योग्यता प्रकट करके धर्मके अधिकारी बने। ...नाना प्रकारके धर्मशास्त्रोका अवलोकन करनेकी आवश्यकता इसलिए है कि पक्षपात रहित होकरके माध्यस्थ भावसे सर्व मतोके शास्त्रोका अध्ययन करके तत्त्वविचार करनेसे जीवको सत्य मार्गकी प्राप्ति होती है।"[८६]

आगे चलकर अवतारोके प्रति अपने मनोभाव प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं कि- "हिन्दुस्तानमे थोडे थोडे काल पीछे ईश्वरको अवतार लेकर अनेक तरहके विरुद्ध पंथ चलाने पडते है। न जाने हिन्दुस्तानियो पर परमेश्वरकी क्या कृपा है जो वह जल्दी-जल्दी अवतार लेता है"।[८७]

विश्व शान्तिदूत :- आपके विलक्षण मार्गदर्शनानुसार आचरण करके स्थायी रूपसे विश्व स्तरीय धार्मिक शांति प्रस्थापित हो सकती है। "प्रेक्षावानोंको..... ....सर्व शास्त्रोंके कहे तत्त्वोकी प्रथम-श्रवण, पठन मनन, निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्ति प्रमाणसे बाधित हो, उसका त्याग कर देना चाहिए और बाधित न हो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए परंतु मतोका खंडन-मंडन देखकर किसी भी मत पर द्वेष बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिए।"[८८]

आज संभवतः सामान्य प्रतीत होनेवाली उपरोक्त बाते तत्कालीन क्रान्तिवीरो और युग सुधारकोंके लिए अत्यत दुष्कर परिश्रम साध्य थी। अधुना दृश्यमान अद्यतन जैन समाजका मानचित्र, नवयुग निर्माता-प्रचड़ भास्करकी दीप्रज्योत और महासौम्य एवं दर्शनीय संयम तेज़रूप जिनशासन गगनांचलके झलहल ज्योतिर्धरके दूरदर्शी एवं पारदर्शी सुदीर्घ नेत्रकमलोंमें प्रतिबिम्बित अखंड़श्रद्धा और उज्ज्वल प्रकाशकी देन थी। उन्हीका सामर्थ्य था। उन्हींका हौसला था। उन्हीका अध्यवसाय था।

आपने अहसास किया कि विश्वमे फैल रही हिसा-असमानता और पक्षपात ही जगतकी अशान्तिके लिए जिम्मेवार है। उनके निवारणके लिए जैनादर्श-अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त ही अमोघ शस्त्र हैं। क्योकि अहिंसाके कारण प्राणीमैत्री, अपरिग्रह द्वारा त्यागवृत्ति और अनेकान्तसे निष्पक्ष दृष्टि प्राप्त होगी तब ही विश्वशाति संभवित बन सकेगी। इस प्रकार उस खंडन-मंड़नके युगके आधुनिकरण कर्ता-उस आधुनिक भगीरथने अपने दो हाथोसें दो प्रकारकी----*(१) खंडनात्मक* -अर्थात् कुरीतियाँ, अंधविश्वास, मिथ्या आंडबरादिको हटाने स्वरूप विध्वंसात्मक *(२) मंडनात्मक-*

अर्थात् साधर्मिक अभ्युदय, पीड़ित-दलित-विधवादिके उत्थान, साहित्य प्रकाशन, शिक्षाप्रचारादि रचनात्मक---भागीरथीको बहाकर समाज सेवा की जड़ोंको भली भाँति सिंचा, फलतः आज वह विशाल वृक्ष बना है - जिसके मीठे फल सभी चख रहे हैं-समाज सुधारका आस्वाद ले रहे हैं।

पूज्य आचार्यश्री ही ऐसे सर्व प्रथम जैन साधु थे जिन्होने ऐसे समाजोत्थानके कार्य-सेवाको प्राधान्य दिया और उसके लिए अपना जीवन तक समर्पित किया। आपका निजी आध्यात्मिक जीवन ज्ञान-ध्यानमे लीन था साथ ही आचार्यत्व भी विश्व कल्याण कामनासे ओतप्रोत था।

जीवन-एक प्रयोगशाला---आपका जीवन एक विशाल और वैविध्यपूर्ण प्रयोगशालाका जीवंत स्वरूप कहा जा सकता है, जिसमे सत्यका अन्वेषण, क्रान्तिकारी परिवर्तनका निर्देशन और भगवान महावीरके अहिंसा और विश्वमैत्रीके सदेश रूप निष्कर्ष पाये जाते हैं) आदर्श मानवता, पुनित परोपकारिता, सुयोग्य साधुतायुक्त मौलिक मार्गदर्शिता आपके कीर्ति कलेवरको न खत्म होने देगी; न अपरिमित विद्वत्तापूर्ण, प्रतिभा सम्पन्न, शासन प्रभावकतासे निबद्ध अ-क्षर अक्षरदेहको विस्मृतिके गर्भमें विलीन होने देगी। पू. श्री चरण विजयजी महाराजजी आपके प्रति हार्दिक उद्‌गार अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं- "साकार धर्म, सशरीर ज्ञान और मूर्तिमान चारित्र यदि कही एक स्थान पर ही देखने हो तो वे पूज्य श्री आत्मारामजी म सा. मे ही दृष्टिगोचर होते है ।"[68]

इसीका मूर्तिमंत स्वरूप साकार हो उठता है आपके कार्योमे, यथा-नामशेष होती हुई आदर्श संस्कृतिके जाज्वल्यमान-भव्य प्रतीक रूप जिर्ण-शीर्ण जिन प्रसादोंकी रक्षा हेतु श्री संघको प्रेरित किया तो उनके अभाव स्थानोंमें या क्षेत्रोमे नूतन चैत्य-निर्माणके लिए आह्वान किया, जो तत्कालीन परिस्थितिमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

अज्ञानांधकारमें भटकनेवाले अपने निराधार जैन समाजको नेत्राजनके लिए एक क्रान्तिकारी कदम उठाया, जो प्रायः आपका स्थान महर्षि श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा.की श्रेणिमे स्थापित करता है। जैसे श्री दिवाकरजी म.सा.ने तत्कालीन परिस्थितियोंके कारण एक क्रान्तिकारी कदम स्वरूप, परंपरागत प्राकृतमे रचानेवाले जैन वाङ्मयको, संस्कृतमे रचनेका प्रारम्भ किया, ठीक, वैसे ही आपने भी, संस्कृत-प्राकृत भाषाकी प्रकांड-पांडित्यपूर्ण विद्वत्ता होने परभी, परिस्थितिके अनुरूप-जब संस्कृत-प्राकृत भाषा का अध्ययन प्रायः नामशेष हो रहा था तब-लोकभाषा हिन्दीमें अपनी समस्त साहित्यिक रचनायें की और जन समाज एवं जैन समाजको प्राचीन साहित्यकी उपादेयता समझाने हेतु अपूर्व-अहमियत-प्रयत्न किये; जो अपने आपमें संपूर्ण सफल रहें और जिससे विश्व मानव मस्तिष्ककी अनेक गलतफ़हमियोंका भी नीरसन हुआ। जैनधर्म-जैन सिद्धान्त और जैन समाजका भव्य ललाट गौरवसे उन्नत बन सका। फल स्वरूप ज्ञान प्राप्त समाज जड़तासे मुक्त होकर संभ्रान्त अवस्थासे निर्भ्रान्त वातावरणको पाकर अभ्युदयकी राह पर अग्रसर हुआ। "श्री आत्मारामजीने देखा कि संसारका त्याग करना-धन दौलत पर लात मारकर साधु-वेश धारण करना कठनि नहीं किन्तु साधारण साधुओके लिए झूटे साम्प्रदायिक बधनोको तोडना या तुड़वाना दुष्कर है .... संन्यास मार्गमे प्रविष्ट होते ही साम्प्रदायिक बन्धनोको आभूषण मानने लग जाते है, चाहे वे बधन उनकी साधनाके लिए हानिकारक ही क्यो न हो . साधु होने पर मिथ्या

प्रतिष्ठा का मोह और भय उसके ज्ञान नेत्रों पर परदा डाल देते है ।"[९०] इसी पर्देको लात मारकर आपने संविज्ञ दीक्षा ग्रहण की और अन्योको दीक्षा-प्रदान अवसरों पर भी आपने उचित मूल्योंको निभाया और आदर्श साधु संस्थाका निर्माण किया। संयम जीवनके प्रत्येक क्रियानुष्ठानों-आचार-विचार-व्यवहार, आराधना-साधनाको, ज्ञान-प्राप्ति और चारित्र गठनकी प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातोंका भी कड़ी निगरानीसे पालन करके और करवाके यतियों और शिथिलाचारियोंकी नागचूड़से संविज्ञ साधु समुदायका उद्धार करके समाजके सामने उत्तम प्रायोगिक आदर्श प्रस्तुत किया ।

"आप ढूंढकवेश छोडकर संविज्ञ साधु बने यह कल्पनातीत साहस भी आपकी उत्कृष्ट मनोदशा, केवल सत्यके स्वीकारके लिए अप्रतिम नैतिक हिमत और सत्यको विजयी एवं असत्यको पराजित सिद्ध करनेकी हार्दिक अभिलाषाका श्रेष्ठ प्रयोग ही है । अथवा 'सर्व धर्म परिषद-चिकागो'मे जैन समाजके भक्त अनुयायीओके प्रखर विरोधका सामना करके दृढ़ निर्धारके साथ जैन धर्मकी यशस्वी विजय पताका फहराने के लिए श्रीयुत वीरचंदजी गांधीको अमरिका भेजनेवाले इस महान गुरुदेवकी प्रायोगिक सिद्धिको ही प्रमाणित करता है ।"[९१] आपकी जीवन प्रयोगशालाके प्रयोगोंका मुख्य ध्येय सत्यावलम्बन कहा जा सकता है जिसमें से सत्यका निर्मल नीर जीवन-तृप्ति प्रदान करता है।

जीवन-गुणोंका समुच्च-नम्रता व निरभिमानता ---

"निर्मल थे गंगाजल - से तुम,

विस्तृत उच्च हिमालय - से तुम,

पावन नीलनभांचल-से तुम,

तुममे जल-थल-गिरि-नभ छवि छायी सुखधाम ।"[९२]

आपके जीवन राहमें फूल नही बिछे थे, लेकिन आप स्वयं फूल बनकर महके-सुवास बिखेरी।"

शायद समुद्रकी अगाधताका पता लगाया जा सकता है, लेकिन सच्चे साधक-महा पुरुषोके गुणोंकी असीमताका वर्णन करना असंभव-सा है। वे आकाश-तुल्य-अनंत होते हैं। लेकिन सुरीश्वजीके अंतस्तलके उद्गारकी ओर गौर करे- 'सर्व गुणोमे निरभिमानता नम्रता मुख्य गुण है, यह बात मत भूलना। जिसका रस-कस सूख गया हो वह सूखा वृक्ष ठिठुरकर-अक्कड बनकर खड़ा रहता है, लेकिन जिसमे रस है, जो प्राणी मात्रको मीठे फल प्रदान करता है वह तो नीचे झूककर ही अपनी उत्तमता सिद्ध करता हे। नम्रतासे शरमाता नहीं हैं। हमे पके फलसे झूकनेवाले आम्र-तरु सदृश सर्वदा नम्रीभूत बन कर लोकोपकार करना चाहिए।"[९३]

इसी हार्दिक-नम्र मनोवृत्तिने ही, अपनी राहोंमें रोडा अटकानेवाले-प्रचंड विरोधकी आँधी फूंकनेवाले-पूज्यजी अमरसिंहजीके, रास्तेमे मिलनेपर दो हाथोंसे प्रेमपूर्वक नीचे बिठाकर, विनयपूर्वक विधिवत् वंदना करवायी थी; तो स्वंय आचार्य पदारूढ़ होने पर भी अपने बड़े गुरुजनोंसे वंदन-व्यवहार और उचित विनय विवेकका ध्यान रखवाया था। गुरुजी जीवनमलजीने जब आपके विरोधमें निकाले गए अमरसिंहजीके प्रतिवाद-पत्र पर अपने हस्ताक्षर किये तब भी उसी नम्रताने गुरुके दोष दर्शन नही होने दिये थे, तो अचलगच्छीय श्री हेमसागरजी-जो अपने आपको जंगम युगप्रधान मान

बैठे थे, उनको-एक जगह पर आपके होनेवाले स्वागत जुलूसमे अपनेसे आगे चलनेकी स्वेच्छासे संमति देकर सतुष्टि प्रदान की और समाजमे नम्रता-उदारता-सरलताकी अनमिट छाप अंकित कर ली।

पू. मूलचंदजी महाराजके भेजे हुए ध्रांगध्राके दो अजनबी शख्शोंको दीक्षा दे देनेके पश्चात् अहमदाबादके अग्रणी-नगरशेठका, उनको दीक्षा-प्रदानके निषेधका पत्र आता है, तब अत्यंत पश्चात्तापके साथ अपनी अपूर्णता-जल्दबाज़ी और तुच्छ बुद्धिका स्वीकार करके हार्दिक नम्रताका नमूना पेश करनेवाले[१४] सूरिजीके निश्चयात्मक निर्धारको कलकत्ताके बाबू बद्रीदासजीकी नम्र अर्जभी परिवर्तीत नही कर सकती है।[१५] अर्थात् आपकी नम्रतामें नमायेपनका आभास नहीहे, न कमजोर कायरोंकी झलक हैं, लेकिन निरभिमानतायुक्त स्वतंत्रताकी सच्ची दिलेरी छलकती है।

आपकी नम्रता और निरभिमानताकी चरमसीमा तब अनुभूत होती है, जब आप-एक दिग्गज विद्वान, मान-सम्मान एवं आदर-सत्कारके उत्तुंग शिखर पर स्थित थे, सत्यासत्यके निर्णयानन्तेर तृणवत् मान करके बेझिझक बेफिकर स्थानकवासी समाजको त्यागकर भगवान श्री महावीर स्वामी के सत्य पंथके पथिक बननेको सन्नद्ध हुए। उस समय २२ वर्षके दीर्घ दीक्षा पर्यायका आग्रह न रखते हुए अहमदाबादमे पूज्यपाद मुनीश्री बुद्धिविजयजी (श्री बूटेरायजी म.)की निश्रामें, शुद्ध-संविज्ञ-चारित्र-संयम मार्ग अंगीकार करके, विधिवत् भगवान महावीरकी आज्ञाको ही सर्वोपरि मानकर स्वीकार किया।

साहसिकता---भारतके महान संतरी पंजाब-जिसकी ऐतिहासिक भूमि-रत्नगर्भा वसुंधरा-की शक्ति अपार है-, उसने, स्वयंके बाहुबलसे बंदीखानेकी बेडियाँ तोड़कर मुक्त होनेवाले बलवान और बंड़खोर बापके बहादूर बेटेकी भेंट जैन जगतको दी। जिसकी नैष्ठिक साहसिकताने नूतन ज्ञान रश्मियाँ युक्त तीक्ष्ण-भेदक विवेक चक्षुका उद्घाटन करके संप्रदायकी सूक्ष्म बेडियोको तोडकर और तुडवाकर स्व-पर जीवनका उद्धार किया, समाजको नया राह दिखाया और अंधकार गर्तसे उद्धारनेवाले सत्यालोकका स्वरूप प्रस्तुत करके अपने खूनके परंपरागत अधिकारको स्थापित किया; मानो अपने उत्तराधिकारका सात्त्विक उपभोग किया।

जीवन संग्राममें असत्यके विरुद्ध निर्भीक योद्धाकी तरह लड़ते रहे और द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसार मृतप्रायः जैन परंपराओंकी कईं भ्रान्तियाँ निवारण करके नये आयाम और नये अर्थोंमें रुपांतरित किया। सत्य धर्मके प्रचारका मार्ग तलवारकी धार सदृश दुर्गम था और परिस्थितिको सत्यानुकूल बनाना लोहेके चने चबाना था। लेकिन, आपकी सत्यदर्शी साहसिकताने ही आपके व्यक्तित्वको एक क्रान्तिकारका रूप प्रदान किया। जो केवल कल्पनाके सुनहरे स्वप्न ही नहीं देखते थे, वैचारिक आंदोलनोको क्रियात्मक रूप भी देनेका तत्काल प्रयत्न करते थे-"आपके चारित्रमे धगधगायमान ज्वालामुखीकी प्रलय-प्रचंडता नही है, लेकिन भूकपकी विनाशकता है। ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यकी भीषणता नही, पर सर्दीको दूरकर, बादलको बिखेरकर, ओस और कोहरेको शोषित करनेवाले बाल रविकी शनैः शनैः वृद्धिगत दमदार गरमी है। बर्फिली शिलाओको घसिटते, पहाडोको विदारते, अनेक हस्तोसे सागरको भेटनेवाले महानदकी प्रखर

विशालता नहीं, लेकिन कॉटे-कंकरोको धकेलती, निर्मल नीर प्रदान करती, खेतोको सिंचती, जरूरत पड़ने पर कभी तुफानी बनती हुई, फिरभी, शांतिपूर्वक सागरको मिलनेवाली नदीकी मीठी प्रबलता है। एक ही तीरसे प्रतिस्पर्धीको हरानेकी नहीं लेकिन एक के बाद एक तीरोंको छोड़कर वादीको सकपकानेकी शूरवीरता है।"[९५]

आपकी साहसिकताके परिणाम स्वरूप जैन समाजकी वर्तमान उन्नतिका चित्रण करते हुए 'श्री विजयानंदावतार' काव्यमे जैन कविने अंकित किया हुआ चित्रण-

"चहुं ओर सुधारस धार वही, मलयानिल मंद बयार वही;

मधुमय सुवसंत प्रचार हुआ, आनंद विजय ! आनंद विजय !

पतितोका प्रभु उत्थान किया, मृतकोको जीवनदान दिया;

गण प्राण पुनः संचार हुआ, आनंद विजय ! आनद विजय !

फिर जैन धर्म उद्धार हुआ, प्रभुका अनंत उपकार हुआ;

यह भारत स्वर्गागार हुआ, आनंद विजय ! आनंद विजय !"[९७]

आपकी साहसपूर्ण शेरगर्जनासे ही तो तत्कालीन मिथ्यात्व और पाखंड, प्रपंच और कृत्रिमता-सभीमें एक साथ तूफानी खलबली मच गई थी। नम्रताका परिचय देते हुए पूज्यजी अमरसिंहजीको विधिवत् वंदना करनेवाले इसी साहसिक वीरकी हिम्मत थी जो उनके झूठे निर्देश-प्रायश्चित्त लेनेके-करने पर पूज्यजीको स्पष्ट कह देते हैं-"मै क्यो प्रायश्चित् लूँ? आपके श्रावक मोहनलाल और छज्जूमल यदि झूठे है तो वे प्रायश्चित्त करे और आप झूठे हो तो आपको प्रायश्चित्त लेना चाहिए।"[९८] विरासतमे पायी सच्चे सैनिककी संस्कारयुक्त साहसिताके कारण आप न कभी डरना सिखे थे, न हारना जानते थे। एक बार सिरोही से आबू जाते समय रास्तेमें डाकूओके भयसे श्रावकोंने चार सिपाही साथमे दिए। रास्ते में डाकूओका नाम सुनते ही सिपाही दूसरे रास्तेसे जानेकी प्रार्थना करने लगे उस समय आपने उन्हें उलाहना देते हुए जोश और हिंमतका संचार किया-आगे बढ़ाया और कुनेहपूर्वक व्यवस्थित आयोजनसे साधुओंके डंडे बंदूककी तरह कंधे पर रखवाकर सैनिक दलका आभास खडा करके डाकुओको भगा दिया।

ऐसे साहसवीर धर्मनायक जिंदादिलीसे जीवन जी गये और औरोंको भी जिला गये। उन्हे विश्वास था कि सत्यमार्गके पथिककी बाधायें हवाके मामूली झोंकोंसे ही दूर हो जाती हैं। सत्यके प्रति प्रेम और श्रद्धायुक्त ठोस ज्ञानका साहस-ये चिंतामणी रत्न हैं जिनके सामने सर्व मुश्किलें नगण्य हैं। साहसके विद्युत् केंद्र सदश आपके सान्निध्यमें जैन समाजने अनूठी चेतना-शक्तिका अनुभव किया।

श्री आत्मारामजी महाराजका जीवन और आदर्श चरित्र, सत्यनुरागी, सेवामय, सम-शम-श्रम का ज्वलंत उदाहरण और सच्चे श्रमणका प्रतिक हैं।

विद्या ददाति विनयम्—"एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो"-[९९]

इस आगमाधारको सर्वदा हदयस्थ रखनेवाले प्रकांड पांडित्य युक्त समर्थ एवं प्रतिष्ठित विद्वान पूज्य सुरीश्वरजीके अंतःस्तलका कोने कोना अहंकाररहित व विनयसे ठसाठस भरा हुआ था। वे विशेष रूपसे यह ध्यान रखते थे कि उनकी लेखिनीसे ऐसा कोई आलेखन कभी न हों जो भ. श्री

महावीर की मूलवाणीके तात्पर्यसे विरुद्ध हों। आपके विविध ग्रन्थोमें लिपिबद्ध कुछ भाव- "इन सर्व प्रश्नोत्तरोमे जो वचन जिनागमके विरुद्ध भूलसे लिखा गया हो उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। सुज्ञजन आगम अनुसार उसे सुधार कर लिख दे.और मेरे कहे अपसूत्रका अपराध माफ कर दे।"[100] जहाँ अपनी प्रगल्भ-व्युत्पन्नमति-बुद्धि प्रतिभारूप योग्यताके बल पर किसी शब्द या वाक्यका अर्थ लिखा है, जैसे कच्छ प्रदेशके अंजार गामके पास श्री भद्रेश्वरजी तीर्थमेसे प्राप्त प्राचीन ताम्रपत्र पर अंकित पंक्तिका अर्थ लिखा है, वहाँ भी विनेय बनकर निर्दिष्ट किया है- "इस चेत्यका एतिह्य रूप खरडे तथा कच्छ भूगोलमे लिखा है श्री वीर सवत तेईस वर्षमे यह जिन चेत्य बनाया। इस लिए हमने ताम्रपत्रके लेखकी कल्पना भी इसके अनुसार ही की है। किसी गुरु-गम्यतासे नहीं। इसलिए इसकी कल्पना कोई बुद्धिमान यथार्थ रूपसे अन्य प्रकारसे करके मुझे लिखे तो बडा उपकार होगा।"[101]

जबकि श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके 'अयोगव्यवच्छेद' एवं 'लोकतत्त्व निर्णय' नामक ग्रन्थ और श्री हेमचंद्राचार्यजीके ग्रन्थ 'महादेव स्तोत्र'के श्रेष्ठ विद्वत्ताके परिचायक अविकल अनुवाद और भावार्थ प्रस्तुत करके जो अपील की है-विनीत संस्कारोंकी द्योतक हैं-यथा-।

"सर्वश्री संघसे हम नम्रता पूर्वक विनती करते हैं कि 'महादेव स्तोत्र', 'अयोग व्यवच्छेद', 'लोक तत्त्वनिर्णय' नामक ग्रंथोकी टीका तो हमे मिली नही है। केवल मूल मात्र पुस्तके मिली है। वे भी प्रायः अशुद्ध है। परंतु कितने मुनियोकी प्रार्थनासे बालावबोध रूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है। उनमे ग्रंथकारके अभिप्रायसे कुछ अन्यथा व जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो हमे मिथ्या दुष्कृत हो। अगर हमारी बाल क्रीडामे भूल हो गई हो तो सुज्ञजनो द्वारा उसका सुधार कर लेना चाहिए।"[102]

उपरोक्त विवरणमें जैसे जिनेश्वरोकी वाणी एव पूर्वाचार्योके वचनोके प्रति जो अखंड आस्थापूर्ण विनयभाव दृष्टिगोचर होता है, ऐसा ही अगाध श्रद्धायुक्त विनय समकालीन महापुरुषोंके प्रति भी प्रवाहित होता रहता है-यथा-१ गुरुबंधु श्री वृद्धिचंद्रजीसे स्वयं आचार्य होते हुऐ भी वंदन व्यवहार करना।[103] २. श्री मूलचंदजी महाराजके शिष्य श्री लब्धिविजयजीम.को भी स्वयंज्ञान-गुण और आचार्यत्वसे बडे होने पर भी दीर्घदीक्षा पर्यायी होनेसे वंदना करनेकी तत्परता बतायी[104] ३. सुरत चातुर्मासान्त श्री संघके श्रावकोकी श्रेष्ठ साधु विषयक पृच्छा समय, अन्य समुदाय* के होने पर भी विद्वान श्री मोहनलालजी महाराजजीकी ओर प्रशंसापूर्ण निर्देश किया और स्वंयसे श्रेष्ठ दर्शाकर श्रावकोको आश्वस्त किया।[105] ४. स्वंय आचार्य होने पर भी जब तक गणि श्री मूलचंदजी महाराज जीवित थे तब तक अपने साधुओंको योगोद्वहन* और बडी दीक्षा जैसे कार्य उनसे ही करवाकर उनके प्रति विनयपूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया।[106] ५. जैन समाजके अरिहंत और केवली भगवंतोंके विरहमें सर्वोत्तम, पंचपरमेष्ठिके पंचपदोमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण-प्रजातंत्र राष्ट्रके राष्ट्रपति तुल्य-महत्तम, आध्यात्मिक गुरुताके सम्माननीय एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पदासीन बनानेके गौरवपूर्ण अवसरोचित श्री संघकी विनती पर, आपका श्रेष्ठ विनयपूर्ण और केवल सामाजिक भावना प्रदर्शित करता हुआ प्रत्युत्तर- "संवेगी समुदायमे मेरी आचार्यकी उपाधिकी क्या आवश्यकता हे ? मैं गुरुदेवके चरणोमे सबसे छोटा सेवक हूँ। दीक्षामे बडे मेरे गुरुभाई मौजूद है। मेरे लिए यह शोभास्पद नही कि मे अपनेको उनसे बडा बनाऊँ। मै इस पदके योग्य भी नहीं हूँ....... ।"[107]

आपके जीवनमें ऐसे अनेक प्रसंग घटित हुए, जो आपके जीवनमे '*विद्या ददाति विनयम्*' उक्ति चरितार्थ करनेवाले और नयन युग्मोंको विस्मित करनेवाले हैं।

महातपस्वी--अपूर्व त्यागमूर्ति, शास्त्रानुसारी शुद्ध संयम यात्राके यात्री श्री आत्मारामजी म. बाह्याभ्यंतर त्याग युक्त उग्र तपस्वी थे। सर्व परिग्रह परत्व ममता-मोह या मूर्च्छारूप बाह्य त्याग और राग-द्वेषादि कषाय रूप आभ्यंतर त्यागसे सर्वांग संयमी, विकट कष्ट-उग्र परिसह या भयंकर उपसर्गमें भी धैर्य और क्षमा धारण करके निरतिचार-रत्नत्रयी-स. दर्शन, स. ज्ञान, स. चारित्रकी उत्कृष्ट आराधनामें लयलीन रहना उनकी महानताका मापदंड था।

उज्जवल नयनों मेंसे झलकती तपश्चर्याकी ज्योति तपोमय मुखारविंदको अधिक प्रकाशित करती थी। बाह्याभ्यंतर तपकी साक्षात् प्रतिमा निर्मल आत्मामें उग्रता या क्रोधकी अलोपतासे मनोहर और देदीप्यमान-प्रसन्न वदनकमल शोभायमान होता था। रसनेन्द्रियको आपने इस सीमा तक जीत लिया था कि बिना स्वाद या जिह्वा लोलूपताके-एकही पात्रमें सभी भोज्य सामग्री मिलाकर, जीवेन गुजाराभर आहारग्रहण कर लेते थे। यदि आहार न मिला तो भी 'तपोवृद्धि' मानकर नित्यक्रममें लग जाते थे। कईंबार आहार-पानीके बिना ही दिन पर दिन निकल जाने पर भी कभी ग्लानि महसूस नहीं की- "गोडवाड के मरुस्थल और भीषण मार्गों से होते हुए पंजाबकी ओर पेदल यात्रा करना साहसी, तपस्वी और सहनशील साधुओ के ही सामर्थ्यमे है। कईवार आपको व आपके साथ साधुओको दो या तीन उपवासकी तपश्चर्याके साथ विहार करना पडताथा.........कईवार मीलो तक पानी या आबादीका निशान भी नही दिखता था और आहारपानीका कष्ट सहन करना पडता था।" [१०८] सच्चे त्याग और उग्र तपके बिना आप जैसी ज्वलंत शासन प्रभावना और धर्मप्रचारकी शक्यता कभी नहीं हो पाती।

विशुद्ध नैष्ठिक ब्रह्मचर्य--चुंबकीय और चमत्कारिक अध्यात्म शक्तिके स्वामी, विश्ववंद्य, निर्मल-नैष्ठिक-आजन्म भीष्म ब्रह्मचर्यके प्रतापी किरणोंसे देदीप्यमान वदन कमलके दर्शन मात्रसे या सान्निध्यके प्रभावसे आधि-व्याधि-उपाधि, तन-मनका मालिन्य या रोग-शोकादि कष्ट दूर भाग जाते थे। इस महान ज्योतिर्धर के अंग-प्रत्यंग-उपांगसे फैलनेवाले ब्रह्मतेज़की प्रतापी रश्मियोंका प्रभाव, आपकी जलद-सी गंभीर गिरामेंभी झलकता था "श्री आत्मारामजी म.के भव्य और मनोहर शरीरके रोमरोम और अणु-अणुसे ब्रम्हचर्यकी पवित्र सुवास फैलती थी। अखंड ब्रम्हचर्यके उत्तम प्रभावसे ही वे विश्वमे वीतरागका शुद्ध सनातन मार्ग प्रसारित कर सके। [१०९]

दूरदर्शी आचार्य--समाजकी नाड़ परख कर उसे हितकारी राहका निर्देशन करनेवाले युग-प्रवर्तक और नवयुग निर्माताके दूरदर्शीपनेका दर्शन हमे होता है जब जैन समाजकी ओरसे श्री वीरचंदजी गांधीके धर्म प्रचार हेतु विदेश गमन पर आक्रोश व्यक्त करते हुए उन्हें जैन संघसे बहिष्कृत करनेका निर्णय होने जा रहा था, तब आपने चेतावनी के सूरसे ललकारा था-- "याद रखना, आज धर्मके लिए श्रीयुत गांधी समुद्र पार 'चिकागो विश्वधर्म परिषद'मे गये थे। मगर शीघ्र ही एक समय थोड़े ही अरसेमे आवेगा कि अपने मौज़-शौकके लिए, ऐश-आरामके वास्ते तथा व्यापार करने, लोग समुद्र पार-विलायत आदि देशामे जायेंगे। उस समय किन किनको बाहर करोगे ?"[११०] --जो आज शतप्रतिशत सत्य सिद्ध हो रहा है। परंपरागत रूढियोके परिवर्तनके लिए

भी जो प्रेरणायें आपके प्रवचनोमें बार-बार होती रहती थी-ये आपके इसी दूरदर्शीपने के गुणसे उद्भवित होती मालूम पडती है जिसकी महती आवश्यकता आज सवासौ सालके बादभी हम महसूस करते हैं।

संयम प्रदान करनेमे भी जो कुशलता आपने अपनायी थी-व्यक्तिकी योग्यायोग्यताकी परख कर लेने के बाद ही योग्य व्यक्तिको ही दीक्षा-प्रदान करनेकी प्रणालिका अपनायी, वह वर्तमान युगमे कितनी आवश्क है उसका अनुभव समाज हितैषी प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। फिलहाल साधु जीवन के शिथिलाचार, मिथ्या-पाखंडादि देखते हुए प्रतीत होता है कि योग्यायोग्यके बिना परीक्षण, शिष्य परिवारवृद्धिके ही एक लक्ष्यसे दी जानेवाली दीक्षायें ही कारणभूत है। यही कारण है कि आपकी अपनायी दीक्षा-प्रदान-प्रणालीका से व्यूत्पन्न आपका विशाल शिष्यवृंद आत्मार्थी-समाजोपकारी अर्थात् स्व-पर कल्यणार्थी था और है भी।

इससे भी एक कदम आगे बढकर दीक्षोपरान्त शिष्य समुदायकी समुचित एवं सर्वांगिण विकासलक्षी कार्यशीलताके लिए आप सदैव तत्पर रहते थे। जैन साध्वाचारकी सच्ची प्रतिष्ठाके प्रणेता, अनुशासन प्रिय, इस सूरिराजने जरा-सी भी शिथिलता या असावधता होने पर शिष्योंकों प्रायश्चित्त रूप दंड़ दिया था। गुर्वाज्ञा भंग करनेवालेको कड़े शब्दोमे फटकार दिया था। साधु जीवनोचित स्वावलंबनमे बेदरकारको-अन्य पर पराधीन रहनेवाले शिष्योंकी भर्त्सना होती थी। साधुओके, साध्वीगण या श्राविकाओंके साथ परिहासजनक या बेमर्याद बातें या अनुचित वर्ताव पर कड़ी चेतावनी और सख्त प्रायश्चित्त दिया जाता था।

गुरुमाताके रूपमें—प्रतिदिन शिष्य परिवारको नियमित धर्म शिक्षण देते थे, तो ज्ञान वृद्धिके लिए स्वानुभूत तथ्योंकी एवं सत्योंकी गोष्ठि करते थे। कभी धार्मिक-सैद्धान्तिक-दार्शनिक चर्यायें होती रहती थी तो कभी सामान्य जीवन प्रसंगोंमें से आध्यात्मिक शैलीसे परामर्श करते थे। जैसे "एकबार एक गाँवमे कहीं पर प्रासुक जल पीने के लिए न मिला। तब साधुओंने छाछ प्राप्तिके लिए प्रयत्न किये लेकिन वह भी नसीब न हुई। इतनेमें निराशाकी बदली हटानेवाले आशारूप सूर्य सदृश किसी वृद्धने उस गाँवके मुख्य जमींदारका घर निर्दिष्ट किया। सभीने वहाँसे यथावश्क छाछ प्राप्त की।" इस प्रसंग पर परमार्थ निकालते हुए आपने साधु मंडलीको कहा कि गाँवके सभी घरोंमें छाछ थी, लेकिन वह मुखिया हीरासिंगके घरसे लायी हुई थीं, जिसमें सभीने आवश्यकतानुसार पानी मिलाया था, इसलिए किसीने छाछ नहीं दी। लेकिन हीरासिंगके घर उसकी अपनी ही छाछ थी इसलिए वह निर्मल और प्रचूर मात्रामें थी। यही कारण था कि हीरसिंगने सबकी तृप्ति हो जाय उतनी छाछ दी। परमार्थ--यहाँ हीरासिंगकी छाछ यह जैन दर्शन और गाँवके घर-यह अन्य दर्शन समझें। जैन दर्शनके ही विविध नय-रूप कुछ कुछ सिद्धान्तोंको स्वीकार करके और उसमें अपना (पानी) कुछ नमक-मिर्च मिलाकर मनघड़ंत सिद्धान्त बने जो एकान्तवादका पानी मिलनेसे दीर्घकालीन नहीं बने। उदित होकर, थोडे समय फैलकर, विस्मृतिके गर्भमें चले जाते हैं। और जैन दर्शन अपने निजी सिद्धान्तोके कारण और परिपूर्ण-छलाछल-भरपूर होनेके कारण वह चिरंजीव है-अनादि अनंतकाल-

शाश्वत संतुष्टि प्रदाता है। जिनशासनके किसीभी सिद्धांतोंको स्वीकारनेवाले कोईभी दर्शनका समन्वय जिनशासनके अनेकान्तवाद और स्याद्वादमें प्राप्त होगा ही। क्योंकि, षट् दर्शनोंका निर्मल समन्वय जिनशासनमे है। इसलिए हे भाग्यवान ! आप इधर उधरके ठोकरे लगनेवाले भ्रमणको छोड़कर हीरासिंग जैसे शुद्ध-निर्मल-सिद्धान्तवाले-जिनशासनकी शरण ले, जिन शासन आपके स्वागतके लिए हीरासिंगके समान सदैव-सर्वत्र प्रसन्नतासे तत्पर है"---ये है आपकी बुद्धि प्रतिभाका चमकार।

बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी--आप, जैसे विनीत, गुर्वाज्ञा प्रतिपालक, अनुशासित, ध्येयलक्षी, सत्य गवेषक कर्मठ शिष्य थे वैसे ही प्रबल अनुशास्ता, सिद्धांतवादी, दूरदर्शी, उत्तर दायित्वके समुचित पालक, आश्रितों एवं शिष्य परिवारके लिए वात्सल्य निधि-श्रेष्ठ गुरुभी थे।

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'—इस उक्तिको सार्थक कर्ता महान गुरुवर्यका चित्रण विद्वान शिष्य श्रीकान्तिविजयजीम.की हस्तलिखित अप्रकाशित डायरीमें इस प्रकारहै-"श्री आत्मारामजी स्वभावतः बहुत ही आनंद युक्त पुरुष थे। कईबार अत्यंत निर्दोष आनंद करते। कभी कभी शास्त्रीय राग-रागिनी गाकर स्वर-लय आदि समझाते। कभी गणितानुयोगकी गंभीर समस्याये स्पष्टतः समझाते। समय होनेपर आकाशके ग्रह-तारोकी पहचान करवाते। कभी न्यायशास्त्रकी गहन बातें और नय-निक्षेपका महत्त्व सरल भाषामे स्पष्ट करते। कभी कभी स्वयमेव पूर्व-उत्तरपक्ष स्थापनाकर चर्चाकी शैलीका उदाहरण उपस्थित करते। श्रावकोको उनके लिए उपयोगी सिद्ध होनेवाले उपदेश देते। दीक्षामे अपनेसे बड़े किसीभी मुनिराजके समागमका अवसर आता तो अभिमान रहित उन्हे वंदना करनेको तत्पर रहते। मना करने परभी विनय धर्मानुसरण करते हुए वंदन व्यवहार करते। ज्ञान और विनयके तो वे भंडार थे।"[111]

वाक्संयम-(तोल तोलकर बोल)---महान व्यक्तियोंका महत्वपूर्णगुण है वाणी और वर्तनमें साम्य। जो अपने वचनका मूल्य स्वयं नही निभाता उसके वचनोंको औरोंके सामने भी निरर्थकता-निर्माल्यता धरनी पड़ती है। पू. गुरुदेवकी वाणी अमूल्य थी। उन्हें वचनगुप्तिका महत्त्व अतीव था। वचनपालनके लिए वे दृढ़ निश्चयी थे और शिष्य परिवारसे भी वैसी ही अपेक्षा रखते हुए एकबार अपने प्रिय प्रशिष्य श्री हर्ष विजयजी म.कोभी टोक दिया था। "यदि आपको नहीं जाना था, तब बोलने के पहले विचार क्यों नहीं किया ? जो बोलो वह तोलकर बोलो। अब घोघाके श्रावकोको वचन दे चूके हो तो उसका पालन करना ही होगा। यदि तुम स्वयं ही अपने वचनोंका मूल्य न जानोगे तो दूसरेभी फूटी कौडीकी किंमत न रखेगे।"[112] और श्री हर्ष विजयजीको घोघा जाना ही पड़ा-वचन पालनके लिए।

आप जानते भी थे और मानते भी थे मौनकी शक्ति-इसलिए उनका प्रत्येक वचन प्रभावपूर्ण, प्रतिभाशाली और प्रतापी-वर्चस्वयुक्त था। वचन सिद्धि उनके चरण चूमती थी। उनकी वाणीसे मानो अमृत रसकी बूंदें टपकती थीं, जिनका पान श्रोताको अमर आत्मानंद प्राप्त करवाता था। गरिमामयी गिरा आपके अनुपम गौरवान्वित व्यकतित्वको अलंकृत करती थीं।

'समयं मा पमायं–प्रमादका आपके जीवनके किसी कोनेमें, कहीं परभी, कोई स्थान न था। आपके जीवनका एक एक पल अनमोल था। प्रत्येक समयके लिए कुछ कार्य और प्रत्येक कार्यके लिए समय निश्चित रहता था। यहाँ तकँ की आराम-आहार-निहार-सभीके लिए निश्चित समय था। और

निर्धारित समय पर ही निश्चित कार्य करनेकी दृढ़ता भी गौर करने योग्य थी। समयके पाबंद गुरुदेव किसीकी भी परवाह नहीं करते थे। अहमदाबादसे विहार करते समय नगरशेठ समय चूके। आपने उनकी परवाह किये बिना ही, औरोके रोकने पर भी न रुककर, विहार कर ही दिया। कलकत्ताके बाबूजीकी रुक जानेकी विनती भी अमान्य करते हुए बिना संकोच कह दिया कि, "कार्यक्रम निश्चित हो चूका है इसलिए अब नही रुक सकते।" लाभ लेनेके लिए बाबूजीकोभी चलना पड़ा। सुरतके श्रावक सांवत्सरिक प्रतिक्रमणका समय हो जाने पर भी तैयार नहीं थे, तब चेतावनीके स्वरमें प्रतिक्रमण प्रारम्भ करनेकी घोषणा कर दी, जिससे सभी धड़ाधड़ तैयार होकर बैठ गए।

आपकी दैनिक जीवनचर्या इसका ज्वलंत उदाहरण हैकि एक अहोरात्रिमें आप केवल चारसे पाँच घंटोके लिए विश्राम करते थे। इसके अतिरिक्त एक मिनिटका समय कभी-कहीं पर, किसीके साथ बेकारमे व्यर्थ नहीं करते थे। तभी तो अपनी इतनी छोटी जिंदगीमे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें चंचूपात किया और सफल जिंदगी जिंदादिलीसे जी गये। इतना विशाल और गहन अध्ययन एवं अध्यापन, लेखन एवं पठन, व्याख्यान एवं वाद, साधु सुधार एव समाज सुधार आदि अनेकानेक स्व-पर कल्याणकारी विशिष्ट कार्य सम्पन्न कर सकें।

समयज्ञ संत---केवलज्ञानके दर्पणमें सनातन सत्य और मूलभूत सिद्धांतोंको देखकर सरल और संक्षिप्त रूपमें प्ररूपित करना यह सर्वज्ञोंका उपकार है। लेकिन उसे चिरकाल तक स्थायी स्वरूपमें समाजमें प्रसारित और प्रचारित करना यह समयज्ञोंके स्वाधीन हैं। समयको पहचानकर समाजका पथप्रदर्शक समयज्ञ कहा जाता है। जैसे पूज्य गुरुदेव समयका मूल्य अमूल्य आंकते थे, वैसे ही समय अर्थात् कालमान-प्रवाहित समयके भी पारखी थे। आपके जीवनमेंभी समय समय पर ऐसे समयज्ञताके चमकार दृष्टिगोचर होते हैं।

सर्व प्रथम स्थानकवासी रूढ़ि परंपरानुसार व्याकरण न पढ़नेकी गुर्वाज्ञाको भी समयज्ञ संतने लांघकर व्याकरणके साथ काव्यालंकार और न्यायादिका भी अभ्यास किया। फलतः शास्त्र सिद्ध सत्यका परिचय हुआ। तत्काल आपने प्रबल-झंझावाती विरोधोंके बीच सत्यका ध्वज लहराया और स्थानकवासी, आर्यसमाजी, थियोसोफिस्टोंके मूर्तिपूजा विरोधी बखेडोको---उन्ही क्षेत्रोंमें मूर्तिपूजाका बिगूल बज़ाकर, मूर्तिपूजाके शास्त्रीयाधारों पर मंड़ाण कर भावपूर्वक-प्रेमसभर-मूर्तिपूजा तत्पर-श्रद्धावान समाजका सृजन करके---बिखेर दिया।

इससे आगे बढकर यथासमय, समर्थ विद्वत्ता और ढूंढ़क समाजके श्रद्धाभाजन होनेके प्रत्युत, समयज्ञ संत आत्मारामजीने सुयोग्य गुरु श्री बुद्धिविजयजी म.सा.की निश्रा एवं शिष्यत्व स्वीकार करके संविज्ञ विधि पक्ष अनुशासनको अंगीकृत किया। यह उनकी समयज्ञताका ही चमकार था कि, एक सफल सुकानी सदृश अगाध ज्ञान और युक्ति प्रमाण न्यायकी अकाट्य तर्कबद्ध विश्लेषण शैलीरूपी पतवारोंसे झूठी प्ररूपणा और क्षुद्र मतभेदोके भंवरोंमें फसनेवाले जैन संघ रूपी जहाज़को बचा लिया। भारत वर्षके समस्त श्री संघोकी सूरिपद स्वीकारनेकी विनतीको, अपनी हार्दिक अनिच्छा होते हुए भी यतियोंके वर्चस्वको दूर करने हेतु ही, मान्य रखकर समयज्ञ साधु श्री आनंदविजयजी,

श्रीमद्विजयानंद सूरि बने और संविज्ञ साधु संस्थाके लिए आचार्यपदका मानो द्वारोद्‌घाटन किया। वही समयज्ञता झलकती है श्री वीरचंदजी गांधीको, विश्वधर्म परिषदमें भाग लेकर जिनशासनकी महती प्रभावना करवानेकी दीर्घदर्शी ख्वाहीश पूर्ण करनेके लिए अमरिका भेजनेमे; फलतः पाश्चात्य विश्वमें जैन धर्मकी सच्ची प्ररूपणा और जैन सिद्धांतोंके प्रति जिज्ञासा प्रगट हुई एवं वर्तमान युगमे दृष्टिगोचर होनेवाले जैनधर्मके ये प्रचार और प्रसार शक्य हो सके। समयके योग्य परीक्षक सूरिजीने प्राकृत एवं संस्कृतमें प्रकांड पांडित्य होने परभी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितिको लक्ष्यमे रखकर अपना संपूर्ण साहित्य लोकभाषा-हिन्दीमें ही रचा और जैन वाङ्मयको लोकभोग्य बनाया। कालप्रवाहको सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टिसे पहचानकर श्रावक समाजकी कुरूढि-परंपराये एवं अज्ञानतादि के अंधकारसे उद्धार करके आलोकित करनेवाले जैन समाजके प्रथम हितैषी सूरिराजके स्वरूपका हमें श्रीमद्वविजयानंदजी सुरीश्वरजीमें अनायास ही दर्शन होते हैं। (आपके प्रवचनोंके निर्देशन और साहित्य सागरकी सर्जन लहरियोके प्रतिघोषोमें इस ध्वनिको अनुभूत कर सकते हैं।)

इस समयज्ञ सूरिजीकी विशाल और उदार भावनाने विश्वधर्मके सर्वथा सुयोग्य जैन धर्मका उपदेश केवल जैनोंको लक्ष्य करके ही नही, जैनेतरो-सर्व मानव मात्रके लिए-उपयोगी बन सके ऐसी लाक्षणिक शैलीमें प्रवाहित किया।

संस्कृति एवं मनीषियोंकी जीवंत संस्था---आपके समयमें ज्ञानको जैसे हवा लग गयी थी। इस शेर-ए-पंजाबकी आक्रोशपूर्ण दहाडकी गूंजसे सुषुप्तोकी निंद खुली। जैन समाज आहिस्ता आहिस्ता करवट बदलता हुआ जागृत होने लगा। आपने अपने अमोघ प्रवचन और अपूर्व लेखनसे शिक्षाके महत्वको प्रसारित किया और प्रचारित भी, जिससे शिक्षाकी ओर कदम बढाते हुए जागृत समाजको योग्य मार्गदर्शन देते हुए कई विद्वान साधु एवं श्रावकोंको धर्मज्ञानाभिज्ञ बनाये जहाँभी गये संस्कृति प्रचार और विद्वान पंडितोंके निर्माण योग्य अनेक कार्य किये।

मूर्तिपूजाके उत्थापक ढूंढक समाज, आर्यसमाज, ब्रह्म समाज़, प्रार्थना समाज, थियोसोफिस्टादि से लोहा लेना बच्चोका खेल न था। इसलिए तद्‌विषयक मनीषियोंको अत्यंत प्रोत्साहित करते हुए जैनधर्म-गंगाको क्षीण प्रायः होनेसे बचाकर इस अद्यतन भगीरथने उसे भागीरथीका रूप प्रदान किया। जैन संस्कृति और साथ साथ हिन्दू संस्कृतिके उत्थान-विकास-विस्तृतीकरणके लिए अथक परिश्रम और प्रयत्न आपके प्रवचन और साहित्यमे अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

ढूंढक समाजमे रहकर ही मुंहपत्ती विरुद्ध और मूर्तिपूजाका प्रचार करना मानो 'दिन दहाड़े चांद दिखानेवाली बात थी। लेकिन, दृढ़ आस्थावान, मानो सत्यके अभिन्न अंग, स. ज्ञानतपोमूर्तिने पंजाबमे चिरकाल तक भ. महावीरके शाश्वत-शुद्ध धर्मको अविचल बनानेके लिए; जी-जान पर खेलकर प्रयत्न किये और ज्वलंत विजय पायी। वर्तमान जैन समाजकी चतुर्विध संघकी-सर्वदेशीय जाज्वल्यमान परिस्थिति आपही के जीवनकी फनागिरिका फल है। साधु संस्थाकी दयनीय दशाको प्राणवान बनाने और विशालता प्रदान करके अक्षय कीर्ति कमाई है।

मंत्रवादी सूरिराज---सभी धर्मोंमें मंत्र-तंत्रका विशिष्ट स्थान माना जाता है। मंत्रसे अशक्य प्रायः

कार्यभी सिद्धि प्राप्त बन जाते हैं। मंत्रवादी यदि उसका सदुपयोग करें तो इन मंत्र-तंत्रसे जगतकी अनेक प्रकारसे कल्याणकारी सेवाये की जा सकती हैं। मंत्रका विषय बुद्धिगम्य नही श्रद्धास्थित होता है। आपके पासभी यह मंत्र रहस्य था, जिसका आपने शासन प्रभावनाके लिए उपयोग किया था। और अपने शिष्य-प्रशिष्यादि परंपरामें भी प्रदान किया था-यथा-"आत्मारामजी महाराजके विद्वान शिष्य श्री शान्ति विजयजसे एकबार वार्तालाप करते हुए पूछनेपर श्री शांतिविजयजीने बताया कि, "रोगापहारिणी, अपराजिता, श्री सम्पादिनी आदि जैन विद्याये मेरे परमोपकारी गुरु आत्मारामजी म.ने प्रसन्नतापूर्वक मुझे दी है, जो उन्हे मेड़ता निवासी - बड़े मंत्रवादी और सदाचारी वयोवृद्ध यतिजीसे प्राप्त दुई थीं। यतिजीने जिनशासनके अनूठे प्रभावक और अतियोग्य अधिकारी जानकर ही ये सिद्ध विद्याये, अपने अयोग्य शिष्योको न देकर आपको दी थी, जो केवल पाठ करनेपर कार्य सिद्धि करवाती थी। आपने भी अन्यंत विनम्रता एवं प्रसन्नतापूर्वक धर्मोपयोगके लिए इसे शिख ली थी और प्रसंग आने पर उपयोग करके जैनधर्म प्रभावना की थी।"[११३]

इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। अंबालाके श्री सुपार्श्वनाथ भगवानके श्री जिनमंदिरजीकी प्रतिष्ठावसर पर सम्पूर्ण तैयारी हो जानेके पश्चात् अचानक घनघोर काली घटाये घिर आयीं और जैसे बरस पडने पर तुली हुईं थी। रंगमें भंग होने ही वाला था। श्रावकोकी विनती ध्यानमें लेते हुए-प्रतिष्ठाका योग्य मुहूर्त संभालनेके लिए--आपने मंत्रित बांस गड़वाया। बादल बिन बरसे ही बिखर गये। लेकिन आश्चर्य यह हुआकि जब तक बांस गड़ा रहा तब तक बादल उमड-घूमड़कर आते और बिना बरसे ही बिखर जाते। जब उस बांसको विसर्जित किया गया-तुरंत ही वर्षाका आगमन हुआ। 'ऐसा क्यो और कैसे हुआ' ? इस प्रश्नका आधुनिक वैज्ञानिक युगमें-मंत्र तंत्र को न माननेवालोके पास कोई उत्तर नही।

अनूठी व्याख्यान कलाके स्वामी---जिनकी वाणीमें पत्थरको भी मोम-कठिनको भी कोमल-बना देनेकी शक्ति है, ज्ञानकी गरिमायुक्त विद्वत्ता बाल सुलभ सरलता, ओजसयुक्त प्रभावकता, काव्यमय रस माधुर्य और प्रसंग या भावानुरूप आरोह-अवरोकी अस्खलित प्रवाहिता, चित्रकार-सी वर्णन शैली और संगीतज्ञकी स्वर और लयबद्ध थिरकन, यथायोग्य शब्दचयन शक्ति और भाषाका प्रभुत्व झलकता हो वह व्याख्याता श्रोताओंको स्तब्ध प्रतिमा सदृश जकडकर रख सकता है। श्रोता प्रवचनके प्रवाहमें बहते बहते अपने आपको भूल जाता है-प्रवचनमें डूब जाता है-सुधबुध भूलकर जैसे अनुभूत करता है कि, यह पीयूषधारा अनवरत बरसती रहे- बहती रहे और में निरंतर अमृतपान करता रहूँ; इसका कभी अत न हों। "आचार्यश्रीकी वाणी भवसागरसे पार उतारनेवाली नोकाके समान थी। जबवे बोलते थे मानो देव पुरुष बोल रहा हो.........उस विराट योगीकी वाणी मेघके समान गंभीरथी, जो श्रोताओंको मोहनिद्रासे जगा देती थी। वाणी इतनी सरल जैसे शिशुकी मुस्कान, मधुर ऐसी जेसे मिश्रीकी ड़ली-जो कोई उसे सुनता आत्मलीन हो जाता था" [११४]

सुरीश्वरजीकी ऐसी गुणालंकृत वाणीका पान करनेका सौभाग्य जिसको मिला वे अपनेको धन्य मानते हैं। सुरत शहरके सुरचंद्र बदामी अपने बाल्यकालके स्मरण मुकुरमें अंकित कुछ चित्रोंको उद्घाटित करते हुए उपरोक्त बातोको सिद्ध करते नज़र आते हैं---"महाराजश्रीकी व्याख्यान शैलीसे श्रोतागण इतना मुग्ध बना रहता था कि प्रारभसे अत तक व्याख्यान होल ठसाठस भरा रहता था। महाराजश्रीकी व्याख्यान

कला अत्यंत असाधारण आकर्षणयुक्त थी। आजस्वी भाषा दिलको छू लेती थी, तो अतिशय सरल भी थी। मेघध्वनि तुल्य गंभीर और सतत सुनते ही रहनेका मन हो ऐसी थी .... कई लोग तो सोचते थे, आपका व्याख्यान सुनने और समझनेकी उन्हे अत्यावश्यकता होने से उन्हे व्याख्यान पीठके एकदम नज़दीक बैठनेका मौका मिले।" [115] आपके व्याख्यानमे सुनाये जानेवाले शिक्षाप्रद फिरभी सरल और मधुर दृष्टांत बच्चोंको भी याद रह जाते थे। उसकी कुछ अलप-झलप झाँकि *"श्री विजयनंदाभ्युदयम् महाकाव्यम्"*- जीवन चरित्र ग्रंथमे श्री हीरालाल वि. हसराजजीने सुंदर ढगसे दी है। सप्त व्यसन त्याग या राग-द्वेष परिणति त्याग, अनेक पत्नीत्व-बालविवाह-दहेजादि कुरूढियो जैसे गंभीर या गहन विषयोंको भी रोचक प्रवाही शैली के भाववाही दृष्टांत द्वारा पेश करना आपकी व्याख्यान कलाका उत्तम गुण था। "आपकी विषय विवेचन शैली ऐसी मनोहर थी कि एक छोटा बच्चा जिस भावसे उसको समझ पाता था वैसाही विद्वान भी। आपश्रीकी दैवी व्याख्यान कला पर, पदार्थ निरूपण शक्ति पर और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व प्रतिपादन शैली पर हजारो आत्माये-साक्षर-मंत्रमुग्ध बन जाते थे। अनेक तत्त्व गवेषक दूर-दूर से आपकी वाणीके अमृतपान करनेके लिए आते थे।[116]

व्याख्यान कलाकी भाँति ही आपका प्रत्युत्पन्न मति उत्तरदान भी अद्वितीय था। "सरलता, कुशलता, गंभीरता, उदारता, शान्ति, स्थित प्रज्ञता, निष्पक्षता, दूरदर्शितादि अनेक गुण आपके प्रत्युत्तरमे दृष्टिगोचर होते हैं।"[117] इसके अतिरिक्त प्रश्नकर्ताकी जिज्ञासा, परिस्थिति, योग्यायोग्यतादिका भी ध्यान रखते थे जिससे प्रश्नकर्ता संतुष्ट होकर निरुत्तर हो जाते थे। जैसे किसीने पूछा, 'आप रामको नहीं मानते'? आपका प्रत्युत्तर था-"हम सिद्ध पद प्राप्त पुरुष-राम-को अवश्य मानते हैं और श्री नमस्कार महामंत्रके स्मरण करते समय द्वितीय पद 'नमो सिद्धाणं' से नमस्कार भी करते हैं।"

किसीने पूछा-'यदि सब साधु हो जाय तो आहार-पानी कौन देगा ?' आपका प्रत्युत्तर था 'जंगलके वृक्ष देने लगेंगे।' (यदि उत्तर असम्भव है तो प्रश्नभीतो असंभव ही है)

मालेर कोटलामे किसी मुस्लिमके प्रश्न "साधुको मांगकर खाना अच्छा नही है। उसे तो परिश्रम करके खाना चहिए"।-उत्तर था-"हमे, हम पाँच महाव्रत पालतेहुए, कौनसा काम कर सकते है यह बताओ।" उसका "जंगलकी लकड़ियाँ इकट्ठी करके बेचने के प्रस्ताव पर आपने समझाया कि उसको भी अगर उसके स्वामीसे मांगनी ही पड़ेगी। इससे हमारा यह भोजन याचना-माधुकरी-अच्छा है।

इस तरह सामान्य प्रश्नकर्ता अपने अनुसार और विद्वान अपने अनुरूप समान संतोष प्राप्त करते थे। जैसे जर्मन विद्वान डो. होर्नल 'उपासक दशांग' सूत्रके अनुवाद समय उत्पन्न समस्याओंके प्रत्युत्तर प्राप्त करके ऐसे प्रभावित हुए कि अपना ग्रन्थ आपके नाम समर्पित कर दिया। वैसे ही कई हिन्दू या आर्य समाजी, मुस्लिम या ईसाई विद्वानोंको भी आपने अनेक शास्त्राधारित प्रमाण प्रस्तुत करके प्रसन्न कर दिये और निरुत्तर भी।

उत्कट वैराग्य भाव होनेपर भी आपको शुष्क आध्यात्मिकताका सहारा स्वीकार्य नही था। शासनोन्नतिके पथ पर खंड़न-मंडन, वाद-विवाद और युक्ति-प्रयुक्तिके प्रतिपक्षियोके आलबेल-पड़कारको झेलकर शास्त्रोक्त, प्रामाणिक, युक्तियुक्त खंड़न-मंड़नकी पटुतासे तार्किक शिरोमणी गुरुदेवने शुद्ध

प्ररूपणा करके हुक्म-मुनि-शांतिसागर-जेठमलादि साधु एवं हिन्दु-मुस्लिम-आर्यसमाजी-ईसाई आदि समस्त विद्वानों-पंड़ितोंको चुन चुनकर मानो काहिल करते रहे-उत्सूत्र प्ररूपको और जिन शासनकी हिलना करनेवालोंको चूप कराते रहे।

सुशीलजीके शब्दोमे 'युक्ति और प्रमाणोंकी तो आप टंकशाल थे' [११८]। आपका शास्त्रीय ज्ञान अगाध था। जब किसी विषयको लेकर चर्चा या शास्त्रार्थ के समय उस प्रश्नको सर्वांगिण रूपसे विश्लेषित करते हैं तब मानो जैसे टंकशालमे से मुद्रायें झरती हों ऐसे ही पूर्वाचार्योंके संदर्भ वचनोंकी वृष्टि होती थी। जैसे-'*चतुर्थ स्तुति निर्णय*' भाग-१-२ नामक छोटेसे ग्रंथमें ही-जिसमें केवल सामुदायिक एक प्रश्नकी ही चर्चा है-(७०) सत्तर प्रामाणिक ग्रंथोंके संदर्भ प्रस्तुत किये हैं-जैसे लगता है प्रतिवादीकी आसपास प्रमाणरूप बाणोके ढेर पर ढेर लादे जा रहे हों।" और उसे घेर कर चूप होनेपर मजबूर कर रहे हों। "यदि आपको ख्यातनाम वादकुशलता प्राप्त करनी हो या जैन दर्शन-अनेकान्त दर्शनका संपूर्ण परिचय पाना है अथवा उसके खजाने को देखना है तब आपको सर्व प्रथम श्री आत्मारामजी म.के पुस्तकोंको पढ़ना चाहिए जिससे अल्पकालमे आप प्रौढ-धुरंधर तार्किक बन जायेंगे।"[११९]

तार्किक शिरोमणि---क्षोभहीन पांडित्ययुक्त विद्वानोमें शास्त्रार्थों द्वारा स्व-स्व धर्मके जय-पराजयकी स्पर्धाके उस युगमें तत्वोंकी खुले दिलसे चर्चा होती थी और परस्पर खंडन-मंड़नभी जिंदादिलीसे होते रहते थे। न्यायके उस बौद्धिक समरांगणमें ब्रह्मतेज परिपूर्ण-तार्किक शिरोमणी, अजेय योद्धाकी अदासे ऐसे अखूट-अजस्त्र-अकाट्य तर्कबाणोंकी वर्षा करनेवाले श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी ऐरावण हस्ति सदृश शोभायमान होते थे। आपके सामने कोई वादी ठहर नही सकता- "सशास्त्र प्रमाण, प्रबल तर्क एवं वादविवादके लिए युक्तियोंका खजाना आपको श्री आत्मारामजी महाराजजीके पुस्तकोमेंसे प्राप्त हो जायेंगे।"[१२०] *अत्यन्त विशाल साहित्यिक अध्ययनमें* इन सबका राज छिपा है। इस गंभीर ज्ञान गरिमा रूप, अज्ञानांधकार के उदीयमान दिनकरका स्वर्णिम तेज़ जिनशासनको अद्यावधि आलोकित कर रहा है। जैन इतिहासका अवलोकन करनेसे ज्ञात होताहै कि नव्य न्यायका पूर्णतया आचमन करनेवाले समर्थ उपाध्याय श्री यशोविजयजी म.के बाद उनके अनुगामियोंमें श्रुताभ्यासका प्रवाह क्षीणतर होता जा रहा था उसे पुनः विस्तृत महानद स्वरूपमे प्रवाहित करनेका श्रेय श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.को मिलता है, जिन्होंने अपनी तार्किक-न्याय बुद्धिके द्वार खुले रखकर शास्त्रीय अभ्यास किया और अन्योंकोभी उसके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

जिस समय मुस्लिमोके आक्रमण एवं राज्य भयके कारण ज्ञानराशि संजोये शास्त्रीय पुस्तकोंको संरक्षण हेतु-मानों नजरोंसे ओझल रखे जाते थे, मुद्रित या प्रकाशित ग्रन्थ तो नाम मात्रके ही थे और हस्तलिखित प्रतादि भी ज्ञान भंड़ारोंकी संदूकोंमें बंद रखे थे। ऐसी दुष्कर परिस्थितिमें भी आपने येन-केन प्रकारेण, जहाँ-तहाँसे अत्यंत विशाल पैमाने पर पुस्तकोको प्राप्त करके तत्त्व परीक्षक एवं समीक्षककी दृष्टिसे अध्ययन किया जिसमें वेद-वेदभाष्य-वेदान्त, स्मार्तपुराण; बौद्ध-मुस्लिम-ईसाई; श्वेताम्बर-दिगम्बर-ढूंढ़क आदि अनेक धर्मोंका-मतोका और आम्नायोका लुप्त और प्राप्त, प्राचीन-अर्वाचीन, मुद्रित-प्रकाशित या हस्तलिखित ग्रन्थ या पत्र-पत्रिकाये, लेख-शोधकार्य, शिलालेख और

ताम्रपत्रादिका संस्कृत-प्राकृत-गुजराती हिंदी-उर्दू-प्राचीन संस्कृत-ब्राह्मी लिपि आदिमें प्राप्त यथा संभव सर्व साहित्यका संपूर्ण अवलोकन-अध्ययन-मनन किया एवं एक स्थितप्रज्ञकी अदासे समाजको ऐतिहासिक, भौगलिक, खगोलिक, वैज्ञानिक, राजकीय, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, तात्त्विकादि विभिन्न प्रकारके अध्ययनके लिए तुलनात्मक विचार शैलीका दृष्टि बिंदु प्रदान किया। उस ओर योग्य पथ प्रदर्शन किया-"वे अपनी प्रखर विद्वत्ता, प्रतिभा और भारतीय हिन्दू सम्प्रदायोंके सूक्ष्म अध्ययनके कारण बहुत प्रसिद्ध थे। प्राचीन भारतके इतिहासके संबधमें उनका ज्ञान इतना विशाल था कि गुजरातके इतिहासकी संस्कृतमें लिखी पुस्तकका संदर्भ देकर जैन लायब्रेरी - अहमदावाद - से प्राप्तभी करवायी. .. कई ऐतिहासिक और साहित्यिक विषयो पर मेरा उनसे पत्र व्यवहार होता रहा। अभी भी मेरे हृदयमें उनके प्राचीन भारतीय इतिहासके [गहन] अध्ययनके प्रति पूर्णश्रद्धा है।"[121]

ऋग्वेदका बृहत्काय ग्रंथ डो. होर्नलके परामर्शसे विदेशसे प्राप्त करके उसका अध्ययन किया था, तो विदेशी डो. हंटरकृत 'भारतीय इतिहास'को भी पढ लिया था। इतना ही नही लंदनकी नवम ओरिएंटल कॉन्फ्रेंसकी संपूर्ण कार्यवाहीका परिचय भी प्राप्त किया था। अंग्रेजीमे प्रकाशित पाश्चात्य साहित्य-जैसे वेदकी उत्पत्ति विषयक मैक्समूलरके विचार, जैन और बौद्ध धर्मके बारेमे प्रो.वेबर, प्रो.जेकोबी, डो.बूलर, डो.होर्नल, जन.कनिंघम आदिके अभिप्राय प्रदर्शित करनेवाले धर्म-दर्शन-इतिहास-साहित्यादिका भी अभ्यास करके पूर्वकालीन आचार्योंकी अविच्छिन्न परम्पराको सिद्ध करनेका सफल प्रयत्न किया।

केवल शास्त्रीयाधार ही नही लेकिन नूतन, भौगोलिक, पुरातत्त्व एवं वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे भी ज्ञात होकर आधुनिक शिक्षितोके मनकी शंकाओका युक्ति युक्त समाधान देते है। '*जैन तत्त्वादर्श*' ग्रंथके सप्तम परिच्छेदके कुछ प्रारम्भिक पृष्ठ दृष्टव्य है जो उनकी समन्वयात्मक कुशाग्र बुद्धिका परिचय देते हैं। जैन शास्त्रोमें वर्णित तथ्योंकी प्रमाणिकता आधुनिक पद्धतिसे तर्कबद्ध और शोध प्रमाणोंके आधार पर सिद्ध की है जो उन्हे तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकायें एवं ग्रंथोंसे प्राप्त थीं। जो उनके विशाल अध्ययन और मौलिक विद्वत्तापूर्ण पांडित्यका प्रमाण पेश करती है।

भारतीय दर्शनोके और धर्मोंके आधुनिक श्रेष्ठ मर्मज्ञ विद्वान पं. श्री सुखलालजीने आपको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है कि-"उनका प्रधान पुरुषार्थ उसीमें था कि जितना हो सके उतना अधिक ज्ञान प्राप्त करना। उनहोने शास्त्र व्यायामकी कसौटी पर अपनी बुद्धिको आजीवन कसा था........ यदि जैन श्रुत वारिधिका ही पान किया होता और उसे संभाला होता तो भी आप बहुश्रुतके रूपमे मान्यता पा जाते, लेकिन आपने वर्तमान देशकालकी विद्या-समृद्धि देखी, नये साधन निरखे और भावि जिम्मेदारी भी सोच ली। आपकी अंतरात्मा बेचैन बनी। स्वयंसे जितना हो सके उतना कर लेनेका निश्चय किया और विशाल समीक्षात्मक अध्ययानन्तर जो स्वतंत्र रूपसे देनाथा वह अपने ग्रंथोमे उंडेल दिया...........बहुश्रुतपनेकी भागीरथीमेंसे छलकती संशोधक वृत्ति और ऐतिहासिक वृत्ति भावि संशोधक और इतिहासविदोको नूतन प्रासाद बांधनेमे नींवका कार्य देगी।"[122]

"वेदो, ब्राह्मणो उपनिषदो, स्मृतियो, बौद्ध ग्रंथो एवं ईसाई धर्मादि संबंधित पुस्तकोका शायद ही किसी जैनाचार्यने इतना विशाल अध्ययन किया होगा या अपनी रचनामे उसके उद्धरण दिए होंगे।"[123]

उन्होने जो कुछ लिखा है उसकी अपेक्षा उनका अध्ययन अत्यंत व्यापक था। क्योंकि प्रतिपाद्य विषयका संक्षिप्त वर्णन करके वे पाठकोंको स्वयं बता देते हैं कि विस्तृत जानकारी कहाँसे प्राप्त होगी। उदा -"यथार्थ आत्म स्वरूपका कथन आचारांग, तत्त्वगीता, अध्यात्मसार, अध्यात्म कल्पद्रुम आदि प्रमुख जैन शास्त्रोंमे; ओर योगाभ्यासका स्वरूप योगशास्त्र, योग विंशिका, योगदृष्टि समुच्चय, योगविंदु, धर्मविंदु-प्रमुख शास्त्रोंसे; तथा पदार्थोंका खंडन मंडन सन्मति तर्क, अनेकान्त जयपताका, धर्म संग्रहणी, रत्नाकरावतारिका, स्याद्वाद रत्नाकर, विशेषावश्यक भाष्यादि प्रमुख ग्रंथोंमे; साधुकी पदविभाग समाचारी छेदग्रंथोंमे, प्रायश्चितकी विधि जीतकल्प प्रमुखमे; और गृहस्थ धर्मकी विधि श्रावक प्रज्ञप्ति, श्राद्ध दिनकर, आचार दिनकर, आचार प्रदीप, विधि कौमुदी, धर्मरत्न आदि प्रमुख ग्रंथोंमे है। ऐसा कोई पारलौकिक ज्ञान नहीं जो जैन मतके शास्त्रोंमे न हो।"[१२४]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सत्य दृष्टिकोणसे तत्त्व परीक्षक और समीक्षककी अदासे किया अध्ययन, आपकी जैन वाड्मय परकी अखंड श्रद्धा-जैनधर्ममें दृढीभूत स्थिरताका परिचायक है।

विश्वविभूति----"इनकी भव्य समाधि गुजरांवालामे स्थित है। भारत आज उस अमूल्य निधिसे वंचित है। परंतु यह सत्य है कि महापुरुष काल और क्षेत्रकी सीमामे बंधे नहीं रहते है। वे विश्वविभूति होते है जो सद्भाव और सत्कर्मके रूपमे सर्वत्र निवास करते है।[१२५]

चाचा लक्खूमल और देवीदित्तामल द्वारा प्रदत्त नाम 'दित्ता' को सार्थक करनेके लिए अनुपम धार्मिक साहित्यके भेंट दाता, नवयुग निर्माताके रूपमें मानो प्रकृतिकी ओरसे सहसा दिया गया-यथानाम तथा गुणधारी-हिमाद्रि-से विराट व्यक्तित्वधारी *'आत्मारामजी महाराज'* आत्म स्वरूप ज्ञाता और आत्म तत्त्वमें रमणता करनेवाले विश्वकी धार्मिक आत्माओंके विश्रामधाम और *श्री विजयानंदाभिधान* अनुरूप आत्मिक आनंद पर विजयवान-ये असाधारण आद्याचार्य परमात्मा श्री महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपरा रूपी बहुमूल्य हारके हीरे थे, जिनकी यशोगाथा अंकित है निम्न शब्दपूंजमें-"देहधारी मानव, साधु, गुरु, सुधारक, खंडन-मंडनके कर्णधारादि रूपोमे श्री आत्मारामजीकी झाँकि, उनका अपूर्ण दर्शन है - और वह भी प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष ही करनेका हमारा तकदीर है .... उस दर्शनमे प्रतिभा, प्रताप और शक्ति-तेजस्विता, तर्क और युक्ति झलकती है; उस झाँकिमे शासन सेवा, कार्य तत्परता, अभ्यासकी गहनता, तलस्पर्शी विचारश्रेणी और कथनी-करणीकी एकरूपता प्रकाशित होती है; अतः उनका व्यक्तित्व असामान्य सुधारकता, नीड़र वक्तृत्व, दृढ़ निश्चय बल, सादगी युक्त संयम, श्री महावीर देवके प्रति सच्ची श्रद्धा से एवं उदारता, व्यवहार कुशलता और व्यवहार शुद्धिकी अक्षय अभिलाषासे पल्लवित होता हुआ दृष्टि पथमे आता है। . . ..वर्तमान अराजकताके बीज उसी समय बोये जा चूके थे। आत्मारामजी के समर्थ व्यक्तित्वने उसे सिर्फ थोडी देरके लिए रोक रक्खा था। और इस तरह वे किसी भावि आत्मारामके राहबर बन गये।"[१२६]

बूझते दीपककी प्रज्वलित ज्योत---(जीवनके अंतिम पल)---आजीवन सच्ची साधनाके परम साधक श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराज इस लोकमें विजयी होकर मानो परलोक-विजयी बननेको उद्यत हुए। आपके अंतिम दर्शक भक्त के उद्गार थे-"आप कहा करते थे कि, 'तुम लोग चिंता क्यो करते हो ? आखिरमे तो हमने बाबाजीके प्रिय क्षेत्र गुजरांवालामे ही बेठना है।' . .आपने अपना कथन सत्य कर दिखाया मगर हम लोगोका..........।"[१२७]

मानो आपको अंतिम क्षणोंका आसार हो आया हों अथवा "महापुरुषोंकी वाणी को कालभी अनुसरण करता है"--- उक्ति चरितार्थ हुई हों। गुजरांवालांमें आप 'सरस्वती मंदिर'की ख्वाहिश लेकर आये थे और अंतिम समयमें भी अपने लाडले प्रशिष्य 'वल्लभ'को उसी बातका परामर्श देकर-आदेश देकर, 'ॐ अर्हन्' के पुनरुच्चारणपूर्वक सबके साथ क्षमापना करते हुए, इस लोकमें भक्तजनोंको अनाथ छोड़कर स्वर्गको सनाथ बनानेके लिए चल पड़े।

बहुत अच्छी तरह सजायी हुई--विमान सदृश पालकी में गुरुदेवको बिराजित करके, चंदन चिता पर अग्निके सपुर्द कर दिया गया। अग्नि संस्कारके स्थान पर एक भव्य और विशाल समाधि मंदिरका निर्माण किया गया जो आपकी अमर कीर्तिका संदेश दे रहा है।

"आमोदकारी आपकी छवि हो गई जो लुप्त है,
परंतु हृदयके बीच वो रहती हमारे गुप्त हे ।
संसारकी निस्सारता का सार जिनको था मिला,
परलोकके आलोकसे था हृत्कमल जिनका खिला ।।
संसृति रही दासा, उदासी किन्तु उससे वे रहे,
निःस्वार्थ हो परमार्थ-रत मिलते न वे किससे रहे ?"